अध्यात्म का प्रथम सोपान

सामायिक

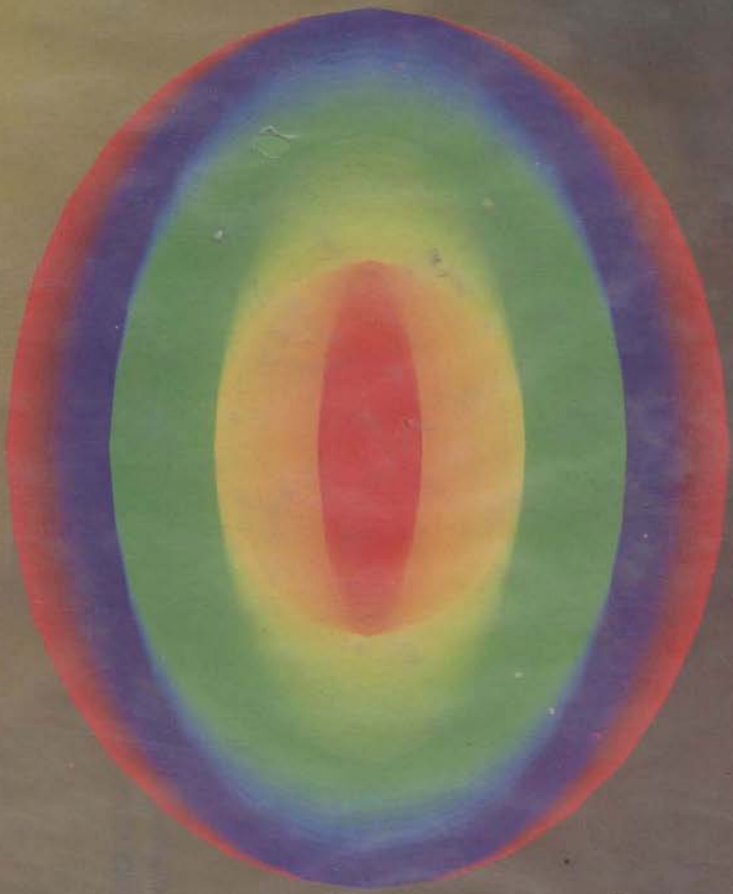

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक की निष्पत्ति है ध्यान और ध्यान की निष्पति है सामायिक। ध्यान और सामायिक के बीच भेदरेखा खींचना बहुत कठिन है। दोनों का बाहरी आकार भिन्न है, अंतरात्मा एक है।

लाभ–अलाभ, सुख–दुःख, जीवन–मरण निन्दा–प्रशंसा – इन सब घटनाओं में सम रहना, अप्रकंप रहना साधना का सर्वोच्च शिखर है। इस शिखर पर आरोहण करने का साधन है, सामायिक। हिंसा, असत्य, संग्रह–ये सब मनुष्य को विषमता की ओर ले जाते हैं। इनसे मुक्त होने का अभ्यास है सामायिक।

कलह, दोषारोपण, चुगली, निन्दा, मिथ्या दृष्टिकोण – ये सब मानसिक शान्ति और सामुदायिक शान्ति के विघ्न है। इन विघ्नों के निवारण की साधना है सामायिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म का प्रथम सोपान
सामायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म का प्रथम सोपान

सामायिक

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)

श्री भंवरलालजी रमेशचन्दजी विजयराजजी राकेशकुमारजी बोहरा
द्वारा—मेसर्स प्रदीप इंडस्ट्रीज, ५-६, गजपती स्ट्रीट, ट्रिपलीकेन
चेन्नै (तमिलनाडु) के सौजन्य से प्रकाशित

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान)
मूल्य : पचास रुपये / संस्करण : १९९९ / मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

ADHYATMA KA PRATHAM SOPAN : SAMAYIK
by Acharya Mahaprajna Rs. 50.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

सामायिक की निष्पत्ति है ध्यान और ध्यान की निष्पत्ति है सामायिक। ध्यान और सामायिक के बीच भेदरेखा खींचना बहुत कठिन है। दोनों का बाहरी आकार भिन्न है, अन्तरात्मा एक है।

लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा—इन सब घटनाचक्रों में सम रहना, अप्रकंप रहना साधना का सर्वोच्च शिखर है। इस शिखर पर आरोहण करने का साधन है सामायिक।

हिंसा, असत्य, संग्रह— ये विषमता की ओर ले जाते हैं। इनसे मुक्त होने का अभ्यास है सामायिक।

कलह, दोषारोपण, चुगली, निन्दा, मिथ्यादृष्टिकोण—ये सब मानसिक शांति और सामुदायिक शान्ति के विघ्न हैं। इन विघ्नों के निवारण की साधना है सामायिक।

सामायिक आध्यात्मिक चेतना के जागरण का प्रयोग है। अध्यात्म सार्वभौम तत्त्व है। इसका किसी देश, जाति, वर्ण और संप्रदाय से संबंध नहीं होता। वह किसी पक्ष से आबद्ध नहीं होता।

सामायिक स्वयं ध्यान है। फिर भी उसमें ध्यान के विशेष प्रयोग किये जाते हैं। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने अभिनव सामायिक का प्रयोग प्रस्तुत कर सामायिक के आध्यात्मिक स्वरूप को उजागर किया है। जिस व्यक्ति ने उसका प्रयोग किया है, उसमें अभिनव आकर्षण उत्पन्न हुआ है। कुछ लोग अपने को व्यस्त मानकर सामायिक की साधना से वंचित रह जाते हैं। उनका दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है।

सामायिक की अड़तालीस मिनट की साधना एकाग्रता की साधना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्रता सिद्ध होने पर चार घंटे का कार्य दो घंटे में संपन्न हो जाता है, फिर खूब व्यस्त होने की अनुभूति नहीं होती ।

अपेक्षा केवल संकल्प की है । युवक सामायिक की साधना कर परिपक्व अवस्था जैसी गंभीरता का अनुभव कर सकता है । वृद्ध व्यक्ति सामायिक की साधना कर युवक जैसी स्फूर्ति का अनुभव कर सकता है । सामायिक क्लब ने सामायिक का व्यापक अभियान शुरू कर समाज के सामने नयी दिशा उद्घाटित की है । प्रयत्न की सफलता अपने जीवन की सफलता है ।

प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में मुनि धनंजयकुमार ने तथा संकलन में मुनि वीरेन्द्रकुमार ने निष्ठापूर्वक श्रम किया है ।

जैन विश्व भारती,
लाडनूं-३४१ ३०६
१ जनवरी १९९६

—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

□ मन में प्रश्न उठा–सुखी कौन ?
क्या वह सुखी है, जिसके पास पर्याप्त संसाधन हैं ?
या वह सुखी है, जिसके हाथ में सत्ता और प्रशासन है ?
भौतिकता से प्रभावित इस संसार में
व्यक्ति खोजता है सुख असार में
इसीलिए उभरती है यह भाषा
सुख की पदार्थ-प्रतिबद्ध परिभाषा
महाप्रज्ञ कहते हैं–
सुविधा और सुख का सम्बन्ध नहीं है
पदार्थ की प्रचुरता है, किन्तु सुख नहीं है
पदार्थ की अल्पता है, किन्तु दुःख नहीं है
सुखी वह है, जो संतुलित है
दुःखी वह है, जो असंतुलित है
संतुलन और असंतुलन से जुड़ा है सुख-दुःख का प्रश्न
अभाव और अतिभाव का संवेदन
संतुलित वह है, जिसने की है सामायिक की आराधना
समय–आत्मा में लीन होने की साधना !

□ अनगित द्वन्द्वों से
अपने ही अन्तर्द्वन्द्वों से
आक्रान्त और दिग्भ्रान्त
झेल रहा है दुःख आज का संभ्रान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनाव से संत्रस्त
अशान्ति से ग्रस्त
चाहता है मानसिक संतुलन
शान्ति और प्रसन्नता का जीवन
उसके लिए अमोघ प्रयोग है सामायिक
उपलब्ध होगा आनंद आत्मिक
निर्द्वन्द्व और निर्विकल्प बन
प्रसन्नता का रहस्य पा लेगा चेतन।

□ महाप्रज्ञ का प्रस्तुत सृजन
अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक
सचमुच अध्यात्म का प्रवेशद्वार
शांतिमय जीवन का उपहार
मिटेगी विषमता
पनपेगी समता
विषमता का एक निदर्शन है जातिवाद
भाषा, वर्ण और संप्रदायवाद
इनसे जुड़ी है मनुज की प्रतिबद्धता
छीन लेती है सहिष्णुता और समता
काला, गोरा, मुस्लिम-ईसाई
नहीं लगते हैं भाई-भाई
मजहबी कट्टरता बनती है दुःस्वप्न
ज्वलंत बन जाता है मानवाधिकार का प्रश्न
एक ओर अहं का उत्कर्ष
दूसरी ओर हीनता का प्रकर्ष
यदि हो जाए सामायिक का अवतरण
मानव का अभिनव संस्करण
मानव-मानव के बीच
फूटेगा मैत्री का बीज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

१.	चारित्र	१
२.	सामायिक धर्म	४
३.	सामायिक : शांतिपूर्ण जीवन का सूत्र	११
४.	सामायिक समाधि	१६
५.	सामायिक के साधक तत्त्व	२७
६.	सामायिक के बाधक तत्त्वों से कैसे बचें ?	३४
७.	सामायिक के तीन आयाम	४७
८.	सामायिक और इन्द्रिय और संवर	५९
९.	स्वर-चक्र का संतुलन और सामायिक	७३
१०.	निर्विचारता और सामायिक	८१
११.	समभाव है चेतना का तीसरा आयाम	९०
१२.	मानसिक स्वास्थ्य और सामायिक	९६
१३.	व्यक्तित्व का नव निर्माण और सामायिक	१०९
१४.	मानसिक शक्ति और सामायिक	१२०
१५.	शक्ति की श्रेयस् यात्रा और सामायिक	१३०
१६.	निःशस्त्रीकरण और सामायिक	१४२
१७.	कर्म-फल भोगने की कला है सामायिक	१४७
१८.	निर्द्वन्द्व चेतना है समता	१५७
१९.	तराजू के दो पल्ले	१६९
२०.	समता की चेतना का विकास	१७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र

चारित्र शब्द के तीन अर्थ हैं–१. आत्मा की अशुद्ध प्रवृत्ति का निरोध। २. आत्मा को शुद्ध-दशा में स्थिर रखने का प्रयत्न ३. जिससे कर्म का क्षय होता है, वैसी प्रवृत्ति।

चारित्र के पांच प्रकार हैं

१. सामायिक चारित्र
२. छेदोपस्थाप्य चारित्र
३. परिहार-विशुद्धि चारित्र
४. सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र
५. यथाख्यात चारित्र

सामायिक चारित्र

समभाव में स्थिर रहने के लिये सम्पूर्ण अशुद्ध प्रवृत्तियों का त्याग करना सामायिक चारित्र है। छेदोपस्थाप्य आदि चार चारित्र इसी (सामायिक) के ही विशिष्ट रूप हैं। उनमें आचार और गुण सम्बन्धी कुछ विशेषताएं हैं, अतः उन्हें भिन्न श्रेणी में रखा गया है।

सामायिक चारित्र सर्व सावद्य योग का त्याग करने से प्राप्त होता है। तीन करण–करना, कराना अनुमोदन करना और तीन योग–मन, वचन, काया–से पापयुक्त प्रवृत्ति का त्याग करना सामायिक चारित्र है। इससे अव्रत आश्रव का सम्पूर्णतया निरोध हो जाता है।

छेदोपस्थाप्य चारित्र

इसका एक अर्थ है–विभागपूर्वक महाव्रतों की उपस्थापना करना। इसका दूसरा अर्थ है–पूर्व पर्याय का छेदन होने पर जो चारित्र प्राप्त होता है, वह चारित्र।

सामायिक चारित्र में सावद्य योग का त्याग सामान्य रूप से होता है। छेदोपस्थाप्य चारित्र में सावद्य योग का त्याग छेद (विभाग या भेद) पूर्वक होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा ग्रहण करते समय सामायिक चारित्र लिया जाता है। इसमें केवल 'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि'-सर्व सावद्य योग का त्याग किया जाता है किन्तु दीक्षित होने के सात दिन या छह मास बाद साधक में पांच महाव्रतों की विभागशः आरोपणा की जाती है। इसे छेदोपस्थाप्य चारित्र कहा जाता है। प्रथम ली हुई दीक्षा में दोषापत्ति आने से उसका छेदन कर फिर नये सिरे से दीक्षा लेना भी छेदोपस्थाप्य चारित्र है।

सामायिक और छेदोपस्थाप्य चारित्र छठे से नौवें गुणस्थान तक होते हैं।

परिहार विशुद्धि चारित्र

परिहार का अर्थ है- विशुद्धि की विशिष्ट साधना। इस विशुद्धिमय चारित्र का नाम परिहार-विशुद्धि है।

इस चारित्र में परिहार नाम की तपस्या की जाती है। नौ मुनि मिलकर इस चारित्र की आराधना में अठारह महीनों तक कठोर तपस्या करते हैं। प्रथम छह महीनों में चार साधु तपस्या करते हैं। चार साधु उनकी सेवा करते हैं। एक साधु को आचार्य चुन लिया जाता है। दूसरे छह महीनों में जो चार साधु सेवा करते थे, वे तपस्या करते हैं और जो तपस्या करते थे, वे सेवा करते हैं। आचार्य वही रहता है। तीसरे छह महीनों में आचार्य पद धारण करने वाला तपस्या करता है और अवशिष्ट आठ में से किसी एक को आचार्य पद पर नियुक्त कर देते हैं और बाकी के सात सेवा रत रहते हैं।

तपस्या का विधान

क्रमांक काल	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
१. ग्रीष्मकाल में	उपवास	बेला[1]	तेला[2]
२. शीतकाल में	बेला	तेला	चोला[3]
३. वर्षाकाल में	तेला	चोला	पंचोला[4]

यह चारित्र सातवें और छठे गुणस्थान में होता है।

१. बेला-दो दिन तक लगातार उपवास।
२. तेला तीन दिन तक लगातार उपवास।
३. चोला–चार दिन तक लगातार उपवास।
४. पंचोला–पांच दिन तक लगातार उपवास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र

जिस अवस्था में क्रोध, मान और माया का उपशम व क्षय हो जाता है, केवल सूक्ष्म लोभ का अंश विद्यमान रहता है, उस समुज्ज्वल अवस्था में सूक्ष्म-सम्पराय नामक चारित्र प्राप्त होता है।

यथाख्यात चारित्र

जिस अवस्था में मोह सर्वथा उपशांत या क्षीण होता है, उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं। इसे वीतराग चारित्र भी कहा जा सकता है। इसमें पाप-कर्म का लगना सर्वथा बन्द हो जाता है। इस चारित्र के अधिकारी दो प्रकार के मुनि होते हैं—उपशांत मोह वाले तथा क्षीण मोह वाले। उपशांत मोह वाले मुनि उसी भव में मोक्ष नहीं जा सकते। क्षीण मोह वाले मुनि उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

यह चारित्र ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक होता है।

सामायिक चारित्र का अंश रूप में पालन करने वाला, बारह व्रत का पालन करने वाला व अंश रूप में आरम्भ-समारम्भ से निवृत्त होनेवाला, देशव्रती-श्रावक कहलाता है और पांच चारित्रों का यथाविधि पालन करने वाला साधु कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक धर्म

देहप्रसादो रसनाजयेन, मनःप्रसादः समताश्रयेण ।
दृष्टिप्रसादो ग्रहमोचनेन, पुण्यत्रयीयं मम देव ! भूयात् ॥

आचार्य ने महावीर की स्तुति मे लिखा– 'प्रभो रसना-विजय के द्वारा मेरा शरीर प्रसन्न रहे । समता के द्वारा मेरा मन प्रसन्न रहे, आग्रह-मोचन के द्वारा मेरी दृष्टि प्रसन्न रहे । प्रभो ! यह पुण्यत्रयी सदा मेरे साथ रहे ।

जो समता का आस्वाद नहीं लेता, उसका मन प्रसन्न नहीं रहता । सामायिक मन को प्रसन्न करने का अपूर्व साधन है ।

सामायिक का अर्थ

राजसमन्द में मेरे पास पांच-सात वकील बैठे थे । उनमें एक वकील सामायिक नहीं करता था । उसका उसमें विश्वास भी नहीं था । परम्परा से वह जैन अवश्य था । मैंने उससे पूछा–'सामायिक क्यों नहीं करते ?' उसने कहा–मेरा विश्वास नहीं है ।'

मैंने बताया–'जो सामायिक नहीं करता, वह सच्चा साम्यवादी भी नहीं होता (वह भाई साम्यवादी था) । सामायिक का अर्थ मुंह पर पट्टी बांधना ही नहीं है । सामायिक का अर्थ है–समता की साधना । सामायिक भगवान् महावीर के समूचे धर्म का सार या निष्यंद है । समता को छोड़ने पर महावीर के धर्म में शून्य रहेगा । आदि से अन्त तक सारा धर्म सामायिक है ।'

सामायिक तीन प्रकार की होती है– श्रुत सामायिक, दर्शन सामायिक और चारित्र सामायिक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत सामायिक

जो क्षण हमारे शान्ति के बीच बीतते हैं, वह सामायिक है। तत्त्व की अन्वेषणा, सत्य की खोज और आत्मा को जानने का प्रयत्न करते हैं, वह सब सामायिक है।

कोऽहं' मैं कौन हूं ? जो मनुष्य है, वह एक दिन समाप्त होने वाला है। ये बच्चे, जवान और बूढ़े कुछ वर्षों के लिए हैं; पुद्गल कभी नहीं मिटते, जितने हैं, उतने ही रहेंगे; केवल अवस्था-परिवर्तन होता है। संसार में जीव और अजीव जितने थे, उतने ही रहेंगे और उतने ही हैं। सबका अस्तित्व असंदिग्ध है। मनुष्य ही एक ऐसा अभागा प्राणी है, जो अपने अस्तित्व में सन्देह करता है और वह यह सोचता है कि कौन जाने परलोक है या नहीं ?

प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर कोई नहीं कह सकता कि परलोक है या नहीं, फिर भी अशुभ आचरण नहीं करना चाहिए। एक कवि ने कहा है कि परलोक के संदिग्ध होने पर भी अशुभ आचरण त्याज्य है। यदि वह नहीं है तो अशुभ के त्याग से कोई हानि नहीं होगी और यदि है तो बेचारा नास्तिक मारा जाएगा।

संदिग्धेपि परे लोके, त्याज्यमेवाशुभं बुधैः।
यदि नास्ति ततः किं स्यादस्ति चेद् नास्तिको हतः॥

जोधपुर के मुसद्दी बच्छराजजी सिंघी डालगणी के पास आए और बोले–'मुझे आप पर तरस आता है। आप लोग सर्दी, गर्मी, भूख प्यास सब सहते हैं। बिना मतलब कष्ट सहते हैं, आगे-पीछे कुछ नहीं है।' डालगणी ने उत्तर दिया–'कष्टों के लिए हम साधना नहीं करते हैं।' साधना में कष्ट आए, उसे सहना हमारा धर्म है। संयम अच्छा है, वर्तमान में भी और भविष्य में भी। अगर तुम्हारा सिद्धान्त फलित हुआ तो हमने जो कष्ट सहा, वह व्यर्थ हो गया। अगर हमारा सिद्धान्त सही निकला तो तुम्हारा क्या होगा ?' बच्छराजजी बोले–'इतनी मार पड़ेगी कि धरती भी नहीं झेलेगी।'

यदि परलोक नहीं है तो कष्ट सहा, वह ऐसे ही गया। यदि परलोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गया तो नास्तिक तो ऐसे ही मारे जाएंगे। गहराई से ऐसा चिन्तन करना भी श्रुत सामायिक है।

आप सारे काम करते हैं, चार बजे उठते हैं। आवश्यक कार्य से निवृत्त हो सामायिक करते हैं, व्याख्यान सुनते हैं, भोजन करते हैं, सोते भी हैं, बातें भी करते हैं। ताश-चौपड़ भी खेलते हैं। समय हो तो आलोचना भी कर लेते हैं। आलोचना करना भारतीय जीवन की चर्या का मुख्य अंग बन गया है। दूसरों की बात करना निकम्मापन है। जो काम में व्यस्त रहते हैं, वे ऐसा नहीं करते। बम्बई में दो फ्लेटों में रहने वाले एक-दूसरे को वर्षों तक नहीं जानते। अपने से अपना काम करते हैं। प्रश्न है–बिना बात किए दिन बीते तो कैसे बीते यहां ?

शाम को भोजन करते हैं, इधर-उधर घूमकर आ जाते हैं। रात को सो जाते हैं। इस दिनचर्या में तत्त्व-चर्चा के लिए समय नहीं है। लोगों से कहा जाता है, अध्ययन कीजिए। उत्तर मिलता है, समय नहीं है। काम करने वाला कभी नहीं कहता, समय नहीं है। प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू से पूज्य गुरुदेव ने पूछा–'आपको पढ़ने का समय मिलता है क्या ?'

'हां !'

'कब ?'

'जब सोता हूं।'

सम्राट् भरत चक्रवर्ती थे। इतना बड़ा राज्य था फिर भी निश्चिंतता थी। उनके यहां मंगलपाठक रहते थे। 'वर्धते भयं–यह मंगलपाठ एक मुहूर्त तक चलता रहता था। भरत ने स्वयं उनको नियुक्त किया था। 'वर्धते भयं'–यह मंगलपाठ मुझे सुनाएं, जिससे मैं प्रमाद में न फंसू।

क्या हम निर्भय हो गए, जो सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझते ? थोड़ा-बहुत समय लिखने-पढ़ने और चिन्तन में लगाना चहिए। जो अपने बारे नहीं सोचते, वे भयंकर भूल करते हैं। उन लोगों ने दूसरों को ज्यादा कष्ट पहुंचाया, जो स्वयं नहीं सोचते।

अपने को जानो, अपने आपको पहचानो। जो अपने को जान लेता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वह सबको जान लेता है।

आचार्य कुंद-कुंद ने केवली की परिभाषा की है– जो अपने आपको जान लेते हैं, वे केवली हैं। केवली सबको जानता है, यह व्यवहार की बात है। निश्चय में वह अपनी आत्मा को ही जानता है।

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। अपने आपको तभी जान सकते हैं जब अपने से भिन्न को भी जानेंगे। दूसरों को बिना जानें एक को कैसे जाना जा सकता है? अस्तित्ववाद ने विद्यार्थी जगत् को प्रभावित किया है। वह कहता है, जब तक अपने अस्तित्व को नहीं जानते तब तक कुछ नहीं जानते। हर व्यक्ति को अपने बारे में ही सोचना चाहिए। जिसने स्वयं के लिए सोचा, उसने भाग्य की कुंजी अपने हाथ मे ले ली।

दर्शन सामायिक

जैन आगम में कहा गया–नादंसणिस्स नाणं– दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता। दर्शन मिथ्या है तो ज्ञान भी मिथ्या है। दर्शन सम्यक् हैं तो ज्ञान भी सम्यक् है। इसका अर्थ है कि ज्ञान दर्शन पर निर्भर है। पर दर्शन क्या है?

एक वह शक्ति है, जिसके आधार पर हमारी धारणाएं बनती हैं, मान्यताएं बनती हैं और एक वह शक्ति है, जिससे हम मानते हैं, जानते हैं। पहले धारणा, फिर मानना या जानना। हमारे सामने एक सूत्र प्रस्तुत हो जाता है-- जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

ज्ञान का काम है जानना। अज्ञान का काम है न जानना अज्ञान एक आवरण है, पर्दा है। दर्शन का संबंध मूढ़ता से है। मूर्च्छा व्यक्ति की चेतना को विकृत बना देती है। हम विकृत चेतना से जो जानते हैं, वह ज्ञान का आवरण हटने पर भी सही नहीं होगा। सूरज उगा हुआ है, आंखें साफ हैं, पर धुंधलका छाया हुआ हैं। कुछ भी सम्यक् दिखाई नहीं देगा। राजस्थान में कभी-कभी भयंकर आंधी आती है। उसे काली-पीली आंधी कहा जाता है। सारा आकाश धूलमय बन जाता है। वह आंधी इतनी सघन होती है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि पांच मीटर की दूरी पर स्थित पदार्थ भी दिखाई नहीं देता, दिन रात जैसा दिखाई देने लग जाता है। ऐसी स्थिति में आंख और सूरज का प्रकाश– दोनों के होने पर भी पदार्थ का सम्यक् अवबोध नहीं होता। वातावरण में एक विकृति पैदा हो जाती है।

जब आदमी को तेज गुस्सा आता है, तब कहा जाता है–अमुक व्यक्ति लाल-पीला हो गया। गुस्से में आकृति बदल जाती है। वह गहरी लाल हो जाती है और उसमें कुछ पीलापन भी आता है। जब व्यक्ति लाल पीला-पीला हो जाता है, गुस्से से भर जाता है, तब उसे सचाई का बोध नहीं होता। उसके सामने विकार का ऐसा घेरा बन जाता है, जिसे छोड़ कर वह सचाई को पकड़ नहीं पाता। व्यक्ति में ज्ञान है, आंख साफ है, किन्तु बीच में मूर्च्छा का ऐसा पर्दा आता है, जो चेतना को विकृत बना देता है।

हम कर्मशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें। ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम का काम है–आंख के सामने कोई वस्तु आए, उसे जान लेना। उसे देखने जानने में जो बाधाएं आती हैं, विकार आते हैं, वे मूर्च्छा से पैदा होते हैं। जानने का संबंध ज्ञानावरण के क्षयोपशम से है, किन्तु सही जानने में, सत्य का ज्ञान करने में केवल ज्ञानावरण का क्षयोपशम का नहीं देता। उसमें दो कर्मों का क्षयोपशम होना चाहिए–ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और मोह कर्म का क्षयोपशम। मूर्च्छा का अभाव और आवरण का अभाव दोनों होते हैं तो सम्यक्ज्ञान संभव बनता है। इसलिए यह कथन संगत प्रतीत होता है– दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के बिना चारित्र नहीं होता, चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता। यह निर्वाण का एक समग्र क्रम है।

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण बिणा ण हुंति चरणगुणा।
अचरित्तस्स नत्थि मोक्खो, अमोक्खस्स नत्थि निव्वाणं॥

सम्यक् दर्शन का, सम्यक् दृष्टिकोण का निर्माण करना बहुत कठिन है। दृष्टिकोण का सम्यग् होना तभी संभव है, जब कषाय कम हो। नादंसणिस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाणं– दर्शन के बिना ज्ञान नहीं होता, इस सचाई को समझने से पहले इस सचाई को समझना होगा। **'णोकसायिस्स दंसणं**– कषायी को दर्शन उपलब्ध नहीं होता। जब तक अनंतानुबंधी कषाय को क्षीण नहीं कर पाएंगे, तब तक सम्यक् दर्शन की प्राप्ति दुर्लभ बनी रहेगी। इसका अर्थ है– मोक्ष तक पहुंचने के लिए सम्यक् दर्शन को समझना है, सम्यक् ज्ञान को समझना है, सम्यक् चारित्र को समझना है, किन्तु इन सबसे पहले इनकी पृष्ठभूमि में छिपे हुए कषाय को समझना है। यह एक पूरी शृंखला है– अनंतानुबंधी कषाय है तो सम्यक् दर्शन नहीं हो सकता। सम्यक् दर्शन नहीं है तो सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता। सम्यक् ज्ञान के बिना सम्यक् चारित्र नहीं हो सकता। मोक्ष की साधना के लिए इस समग्र क्रम को जानना आवश्यक है। यदि यह क्रम समझ में आ जाता है तो मोक्ष की साधना का, अध्यात्म और सम्यक् दर्शन का गुर हमारे हाथ में आ जाता है।

चारित्र सामायिक

हमारे आचरण में समता आए। परिवार में समता का प्रयोग हो। आनन्द आएगा। पिता के चार पुत्र हैं। एक पर मोह करे और जो देना चाहे, उसे ही दे तो घर में कलह हो जाएगा। सामायिक को रूढ़ मत बनाइए। सामायिक करने वाला किसी के साथ असमानता का व्यवहार नहीं करता। वह दूसरे के हक को नहीं छीन सकता। सामायिक का प्रतिबिम्ब हमारे सामान्य जीवन में आना चाहिए।

भिक्षु स्वामी ने तेरापंथ का विधान लिखा। उसकी विशेषता है कि उन्होंने समता को विधान का मूल आधार बनाया। एक पढ़ा-लिखा साधु है, दूसरा केवल संयम पालन करने वाला है। भिक्षा में यदि एक रोटी आती है तो दोनों साधु आधी-आधी कर लो। साधु सोते हैं, उसका भी क्रम है। हर वस्तु की मर्यादा है।

सामायिक करने वाले सोचते हैं– सामायिक करेंगे तो परलोक सुधरेगा। वर्तमान यदि कलह, झगड़े में बीतता है तब परलोक कैसे सुधरेगा? सामायिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समय शान्ति मिलनी चाहिए। उसका प्रभाव सारे दिन रहना चाहिए। हमने धर्म को काल-प्रतिबद्ध और क्षेत्र-प्रतिबद्ध बना दिया। साधुओं के स्थान पर गए तो उसे धर्म का क्षेत्र मान लिया। घर में आए उस समय वह गृहस्थ का खाता है। क्या यह खाता लड़ने के लिए है ? तब फिर एक मुहूर्त तक सामायिक की मेहनत ही क्यों की ? दिन में एक बार खाने पर क्या उसका प्रभाव पांच-छह घण्टे तक नहीं रहता ? सामायिक का प्रभाव भी तो कुछ देर रहना चाहिए। सामायिक एक मुहूर्त तक करते हैं, यह अभ्यास का समय है। वास्तव में यह जीवन जीने की कला है और उपयोगी है। सामायिक के वास्तविक मूल्य को समझकर उसे जीवन-व्यवहार में उतारना हमारा परम कर्त्तव्य है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सामायिक : शांतिपूर्ण जीवन का सूत्र

हजारों लोग जिसकी प्रतिदिन आराधना करते हैं, क्या उसके बारे में भी चर्चा आवश्यक है ? जैन श्रावक-श्राविकाएं प्रतिदिन सामायिक करते हैं, अपने बच्चों को भी वे सामायिक की प्रेरणा देते हैं। प्रश्न है–वह सामायिक क्या है ? किसे कहते हैं सामायिक ? सामायिक स्वीकार करते समय एक श्रावक बोलता है– **'करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।'** एक साधु सामायिक स्वीकार करता है तो प्रतिज्ञा करता है–**सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि।** सावद्य योग के प्रत्याख्यान का नाम है सामायिक या समता।

साधना का सुन्दर सूत्र

सावद्य योग की परिभाषा बहुत स्पष्ट है। अठारह पाप सावद्य हैं। इन अठारह पापों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

पहला वर्ग– प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह।

दूसरा वर्ग– क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष।

तीसरा वर्ग– कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति।

चौथा वर्ग– माया-मृषा और मिथ्यादर्शन

इन चार वर्गों में अठारह पाप समाहित हो जाते हैं।

हम विचार करें– सामायिक करने वाला क्या छोड़ता है ? पांच आश्रव–प्राणातिपात आदि को छोड़ता है। क्रोध, मान, माया, लोभ और राग-द्वेष को छोड़ता है। यदि इस अर्थ का ध्यान हो तो सामायिक करते समय एक स्पष्ट चित्र बनेगा कि मैं क्या कर रहा हूं। मैं क्रोध को उपशान्त करने की साधना कर रहा हूं। मैं अहंकार को शांत करने की साधना कर रहा हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया और लोभ को मिटाने की साधना कर रहा हूं।... शल्य मुक्ति की साधना कर रहा हूं। साधना के इस सुन्दर सूत्र का नाम ही सामायिक है।

आवश्यक है अर्थबोध

बहुत सारे लोग सामायिक करते हैं, किन्तु इस ओर ध्यान नहीं देते कि वे क्या कर रहे हैं। जब कुछ करते हैं तब यह पता तो होना ही चाहिए कि क्या कर रहे हैं। अगर इस पर ध्यान नहीं दिया जाएगा तो उस तोते की सी स्थिति होगी, जो अफीम के डोडे पर चोंच मारता हुआ कहे जा रहा था–अफीम खाना मना है। क्योंकि उसने मात्र सीखा था, रटा था, अर्थ नहीं जान सका था।

सामायिक करते समय सामायिक के अर्थ को विस्मृत नहीं करना चाहिए। सामायिक की साधना बहुत पवित्र साधना है। अठारह पापों से मुक्त होने की, उनसे दूर होने की साधना है। जो व्यक्ति अड़तालीस मिनट तक प्रतिदिन कई बार इसका अभ्यास करता है, उसका प्रभाव उसके जीवन पर पड़े बिना नहीं रहेगा। सामायिक एक सुदृढ़ आलम्बन है। जो इसका सहारा लेता है, वह काफी बुराइयों से बच जाता है।

ऐसा न्यायाधीश : ऐसा पुत्र

ब्रिटिश शासक हेनरी चतुर्थ चतुर और न्यायी शासक था। एक बार सम्राट् के पुत्र ने कोई अपराध किया। मामला न्यायालय तक गया। न्यायाधीश ने मामले की गंभीरता को पहचाना और हेनरी के पुत्र को कारावास का दण्ड सुना दिया। सम्राट के पास यह समाचार पहुंचा। सम्राट् तत्काल हाथ जोड कर बोला–प्रभो! मैं धन्य हूं, मुझे ऐसा न्यायाधीश मिला, जो न्याय करना जानता है। मैं इस बात के लिए भी अपने को धन्य मानता हूं कि मुझे ऐसा पुत्र मिला, जो कानून का सम्मान करना जानता है, उस पर अमल करना जानता है।

अरुचि का रहस्य

अमल करना, क्रियान्विति करना, आचरण में लाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। पूज्य गुरुदेव भिवानी में विराज रहे थे। एक सम्मानित परिवार के मुखिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कहा–महाराज ! मेरा लड़का धर्म में रुचि नहीं लेता है। आप उसे समझाएं। एक दिन वह लड़के को लेकर मेरे पास आया। मैंने लड़के से पूछा– तुम्हारी रुचि धर्म में कम क्यों है ? लड़का बोला–इस प्रश्न का उत्तर मैं दूंगा, किन्तु पिताजी के सामने कुछ नहीं कहूंगा। पिता उठकर चला गया। वह बोला– धर्म में मेरी रुचि कम नहीं है, साधु साध्वियों के प्रति भी मेरे मन में अगाध श्रद्धा है। किन्तु एक बात से मेरे मन में बड़ा द्वन्द्व है। मेरे पिताजी दिन में तीन-चार बार साधु-साध्वियों के पास जाते हैं, दिन में अनेक बार सामायिक करते हैं, किन्तु घर में सबसे ज्यादा लड़ाई-झगड़ा भी वे ही करते हैं। मैंने विचार किया– धर्म स्थान में जाकर भी यदि इनमें कोई सुधार नहीं आया तो वहां जाने से मुझे क्या फायदा होगा ? इसलिए मैं यहां बहुत कम आता हूं।

जीवन में समता आए

सामायिक करने वाला सामायिक का पूरा पथ्य रखता है या नहीं, यह बहुत विचारणीय बात है। समता की साधना की है तो कलह, निन्दा, चुगली, ईर्ष्या आदि कुप्रवृत्तियां अवश्य क्षीण होंगी। सामायिक पर अमल किए बिना, समता का आचरण किए बिना, सिद्धान्त कितना ही पवित्र हो, फलित नहीं होगा। उसका मूल्य दूसरों की समझ में नहीं आएगा।

भगवान् महावीर ने कहा–पहली आवश्यकता है समता की साधना। इसकी साधना किए बिना कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे प्रवेश नहीं कर सकता, आत्मा की ओर प्रस्थान नहीं कर सकता। हम इसका मूल्य आंके। यह कोई सामान्य बात नहीं है। आत्मकल्याण और परकल्याण की इससे बड़ी दूसरी कोई साधना नहीं है। जीवन में समता उतर आए तो फिर किसी बात की जरूरत नहीं रह जाती, कुछ पाना शेष नहीं रह जाता।

शान्तिपूर्ण जीवन का सूत्र

जीवन में बहुत सी परिस्थितियां आती हैं। कभी लाभ हो जाता है, कभी हानि। सुख-दुःख, जीवन-मरण–इस प्रकार की हजारों स्थितियां आती हैं, जाती हैं, कभी-कभी एक दिन में ही न जाने कितनी स्थितियां आ जाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इन स्थितियों में सम न रहें, इनके अनुसार चलायमान होते रहें, आन्दोलित होते रहें तो बड़ी विषम स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। अच्छा जीवन जीने का सूत्र यही है कि हर स्थिति में शान्त रहें और शान्त वही रह सकता है, जिसने सामायिक की साधना की है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सामायिक करने वाला हर आदमी वीतराग बन जाएगा, किन्तु इससे इतना जरूर होगा कि वह ऐसी जीवन शैली अपना लेगा, ऐसे मार्ग पर अपने चरण बढ़ा लेगा, जहां समता की सिद्धि उसे प्राप्त हो जाएगी। जिसने समता साध ली, जिसके जीवन में उच्चावच भाव नहीं रहा, उससे बड़ा आदमी इस दुनिया में दूसरा और कोई नहीं होगा। व्यावहारिक जीवन में उससे ज्यादा सुखी आदमी दूसरा नहीं हो सकता। जिसकी समता सिद्ध हो जाती है, वह जीने मरने से भी प्रभावित नहीं होता। आचार्य भिक्षु के जीवन में यह समता सिद्ध हो चुकी थी, सामायिक पक गई थी इसीलिए वे लाभ-अलाभ, सुख-दुःख और जीवन मरण में तटस्थ रह पाए।

पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन के बारे में बड़ी मार्मिक बात लिखी है। एक तरह से वह सामायिक की सिद्धि से निकला हुआ स्वर है। आपने लिखा- मैंने अपने जीवन में जितना सम्मान पाया, उतना शायद बहुत कम लोग पाते हैं और जितना अपमान देखा, उतना बहुत कम लोग देख पाते हैं। रायपुर में लोगों ने देखा– कितने पुतले जलाए गए थे। कोरा सम्मान ही सम्मान मिलता तो अहंकार आने को बड़ी संभावना थी और कोरा अपमान ही अपमान मिलता तो हीन भावना से ग्रस्त हो जाने की संभावना थी। सम्मान और अपमान का ऐसा संतुलन रहा कि न तो अहंकार आया और न किसी प्रकार की हीनभावना ही पनपी।

सबसे बड़ी समस्या

जिसने सामायिक की सिद्धि कर ली, वही ऐसी अनुभूति कर सकता है। दुनिया की सबसे बड़ी समस्या गरीबी नहीं है। यह एक समस्या तो है किन्तु सबसे बड़ी समस्या नहीं है। मेरी दृष्टि में सबसे बड़ी समस्या है असंतुलन की। न जीवन में संतुलन, न व्यवस्था में संतुलन। मनुष्य ने अपना संतुलन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खो दिया है। जीवन के सारे बोझ को मात्र एक पलड़े में डाल दिया है। अध्यात्म की साधना को बिल्कुल भुला सा दिया है। आज व्यावहारिक जीवन में समता का सूत्र नहीं मिलता। उसमें मिलता है स्पर्धा का सूत्र। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है, वह इतना करे तो हम इतना करें। प्रत्येक क्षेत्र में कदम-कदम पर स्पर्धा चलती है।

समता का सूत्र अध्यात्म का सूत्र है। सामायिक की साधना में इन बातों पर ध्यान केन्द्रित होना आवश्यक है–

- उच्चारण शुद्ध हो।
- सामायिक का अर्थ ज्ञात हो।
- यह अनुप्रेक्षा होनी चाहिए-मैं समता के किन सूत्रों की साधना कर रहा हूं। किन सावद्य योगों को मैं छोड़ रहा हूं और किन निरवद्य योगों की प्राप्ति की चेष्टा कर रहा हूं।

अनुप्रेक्षा का यह विवेक सामायिक के साथ जुड़ जाए तो सारे व्रत स्वयमेव सध जाएं। यदि यह पूछा जाए– एक शब्द में भगवान् महावीर का धर्म क्या है तो इसका उत्तर होगा–सामायिक। इतने महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान की साधना पहली आवश्यकता है। इसे अपना कर अपने जीवन को सार्थक और सफल बनाया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक समाधि

सड़क कीचड़ से लबालब भरी थी। एक मोटर आयी और उसमें फंस गयी। कार-चालक ने इधर-उधर देखा। एक आदमी दौड़ा-दौड़ा सहायता के लिए आया। दोनों ने जोर लगाया, मोटर कीचड़ से बाहर निकल गयी। मोटर-चालक ने उस आदमी को पांच रुपये दिए और पूछा–'तुम्हें तो बहुत कमाई हो जाती होगी ? दिन से भी रात को अधिक।' वह बोला–'नहीं, बाबूजी ! रात में कोई कमाई नहीं होती, दिन में ही कुछ मिल जाता है।' 'अरे ! ऐसा क्यों ? रात को तो मोटरें अधिक आती होंगी ?' उसने कहा–'बाबूजी ! रात को तो मैं मेहनत करता हूं। सड़क पर पानी डालता हूं। सुबह तक कीचड़ तैयार हो जाता है और फिर आने-जाने वाली मोटरें फंसने लग जाती हैं, मेरी कमाई प्रारम्भ हो जाती है।

आप देखें– कीचड़ बनाने वाला और कीचड़ से निकालने वाला एक ही व्यक्ति है। वही फंसाता है और वही निकालता है।'

समता और विषमता का हेतु

हम भी ऐसा ही करते हैं। स्वयं ही अपनी कार को फंसाते हैं और स्वयं ही उसे निकालते हैं। दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। हम स्वयं ही विषमता पैदा करते हैं और स्वयं ही समता का प्रयत्न करते हैं। विषमता पैदा करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है और समता पैदा करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है। हम समता का प्रयत्न तब करते हैं जब विषमता की मात्रा बढ़ जाती है, वह हमें सताने लग जाती है, तब समता की बात सोचते हैं। हमें लगता है कि समता अच्छी है, उससे बढ़कर दुनिया में कोई अच्छी बात नहीं हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती। साधना के क्षेत्र में सर्वाधिक मूल्य किसी का है तो वह है समता का। उससे अधिक किसी का मूल्य नहीं है।

सामायिक है कषाय का विवेक

हम साधक हैं। साधना करते हैं। साधना का प्रयोजन है–कषाय का विवेक, कषाय को दूर करना। कषाय का अर्थ है–क्रोध, मान, माया और लोभ। यदि हम साधना करते हैं और उसकी निष्पत्ति के रूप में कषाय का विवेक नहीं होता, कषाय की कमी नहीं होती तो मान लेना चाहिए कि साधना फलित नहीं हो रही है। यदि कषाय क्रमशः दूर होते चले जा रहे हों तो मान लेना चाहिए कि साधना ठीक दिशा की ओर गतिशील है, वह क्रमशः सफलता की ओर बढ़ रही है। साधना के फलस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म शरीर की विशिष्ट प्रक्रियाएं भी जागृत होती हैं; किन्तु यह अत्यन्त गौण बात है। इसका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। आध्यात्मिक साधना का सर्वाधिक या एकमात्र मूल्य है–कषाय का विवेक, कषाय का विलगाव, कषाय का उपशमन, कषाय की शांति। यही है समता या सामायिक। एक शब्द में कषाय की कमी ही सामायिक है।

अर्थ सावद्य का

समता का उपासक **'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि–'** इस पाठ का उच्चारण करता है। इसका अर्थ है–'मैं समस्त सावद्य योग (प्रवृत्ति) का प्रत्याख्यान करता हूं, उससे अपने आपको अलग करता हूं।' सावद्य योग का अर्थ है–पापकारी प्रवृत्ति। वह कौन-सी प्रवृत्ति है, जो पापकारी है? जो प्रवृत्ति क्रोध, मान, माया और लोभ से प्रेरित होती है, वह पापकारी प्रवृत्ति है, सावद्य योग है। आचार्य मलयगिरि के अनुसार अवद्य का अर्थ है–क्रोध, मान, माया और लोभ। जो अवद्य सहित प्रवृत्ति होती है, वह है सावद्य प्रवृत्ति। मूल है कषाय। कषाय-सहित प्रवृत्ति सावद्य होती है। उसका विवेक करना, निरोध करना, वह है सामायिक, समभाव। न इधर झुकाव, न उधर झुकाव। दोनों पलड़े बराबर। जैसे तराजू के दोनों पल्ले बराबर होते हैं, वैसे ही हमारी प्रवृत्ति के दोनों पल्ले जब बराबर होते हैं, न राग और न द्वेष, कहीं कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकृति नहीं, तब सामायिक होता है। जब हम सम चलते हैं, तब होता है सामायिक, तब होती है समता की साधना।

किसके होता है सामायिक ?

सामायिक किसके होता है–यह प्रश्न है। प्राचीन गाथा में इसका उत्तर है–

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं हवइ, इइ केवलिभासियं।

–सामायिक उसके होता है, जो सब प्राणियों के प्रति सम होता है। जिसके मन में किसी भी प्राणी के प्रतिकोई विषमता नहीं होती वह समभाव की साधना में बढ़ता चला जाता है। जहां विषमभाव आ गया, वहां सामायिक नहीं हो सकता। उसका स्वरूप ही है समभाव।

क्या संभव है समभाव ?

एक प्रश्न उभरता है कि क्या सम रहना सम्भव है ? क्या यह केवल मानसिक कल्पना ही तो नहीं है ? क्या यह सम्भाव्य भी है ? यदि हम बहुत ऊंचा आदर्श स्थापित कर लें और उसके गीत गाते चले जाएं, यशोगान करते-करते न ऊबें तो क्या वह हमारी आकाशी उड़ान नहीं होगी ? क्या वह मानसिक कल्पना मात्र नहीं होगी ? क्या वह केवल श्रेष्ठता का आवरण नहीं होगा ? वास्तविकता क्या है ? यथार्थ क्या है ? क्या ऐसी साधना सम्भव है ? क्या ऐसा हो सकता है कि मनुष्य लाभ-अलाभ आदि द्वन्द्वों में सम रहे ? व्यवहार की भूमिका में यह सर्वथा आकाशी उड़ान है। यदि हम व्यवहार की भूमिका में जी रहे हैं, चल रहे हैं तो निश्चित मान लेना चाहिए कि यह सारी गाथा केवल आकाशी उड़ान है। यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि आदमी लाभ में भी सम रहे और अलाभ में भी सम रहे। जैसे ही कुछ-लाभ होगा, प्रसन्नता आएगी। जैसे ही अलाभ होगा, विषण्णता आएगी। यह निश्चित क्रम है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, चाहे सम्बन्धित व्यक्ति प्रकट न करे। वर्तमान में तो ऐसे यन्त्र भी हैं, जो मापकर बता देंगे कि अमुक घटना से आपके मन में प्रसन्नता की मात्रा कितनी बढ़ी है और अमुक घटना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से विषाद की मात्रा कितनी बढ़ी है। यह सम्भव कैसे हो सकता है कि व्यक्ति दुःख-सुख में सम रहे ? कभी सम्भव नहीं है। सुख होगा तो मन आह्लाद से भर जाएगा, विकसित हो जाएगा। दुःख होगा तो मन विषण्ण हो जाएगा, सिकुड़ जाएगा। देखने वाले को भी पता लग जाएगा कि अभी चेहरे पर क्या भाव उभर रहे हैं ? क्या घटित हो रहा है ? आकृति भी वही है किन्तु भिन्न-भिन्न स्थितियों में उसकी अवस्था भिन्न-भिन्न हो जाती है। आदमी कुछ और का कुछ और बन जाता है।

कैसे सहे महावीर ने कष्ट ?

कुछ दिन पहले की बात है। एक आदमी मेरे पास बैठा था। उसको देखते ही दूसरे व्यक्ति ने कहा–'लगता है, तुमने काफी पैसा कमाया है।' उसने कुछ पूछा नहीं किन्तु उसकी आकृति बता रही थी कि उसने पैसा कमाया है। सचमुच उसने काफी पैसा कमाया था। आकृति देखकर बताया जा सकता है कि व्यक्ति घाटे में है या लाभ में। चेहरा स्वयं बता देता है, आकृति स्वयं बता देती है। हम यह कैसे मानें कि सुख-दुःख, लाभ-अलाभ आदि द्वन्द्वों में व्यक्ति सम रह सकता है ? व्यवहार की भूमिका में यह विषमता अवश्य रहेगी। जब लाभ होगा तो प्रसन्नता फूट पड़ेगी और जब अलाभ होगा तो विषाद आ ही जाएगा। सुख होगा तो शरीर विकस्वर हो जाएगा और दुःख होगा तो सिकुड़ जाएगा। यह सामान्य बात है। भगवान् महावीर ने कहा–इनमें सम रहने वाला सामायिक कर सकता है। वे कोरी कल्पना की बात तो नहीं कह सकते। मैं कई बार सोचता हूं कि महावीर को इतने कष्ट झेलने पड़े, क्या कोई शरीरधारी व्यक्ति ऐसे कठोर कष्टों को झेल सकता है ? क्या ऐसी स्थिति में कोई समभाव में रह सकता है ? एक आदमी ने उनके कानों में कीलें ठोंकी, गालियां दीं, फिर भी वे प्रसन्न रहे, हंसते रहे। जरा भी उनमें आवेश नहीं आया। यह कैसे सम्भव हो सका ? किन्तु सोचते-सोचते मुझे लगा कि सविकल्प मन में यह सम्भव नहीं है। मन की सविकल्प अवस्था में लाभ में सुख होगा, प्रसन्नता होगी और अलाभ में विषाद होगा, विषण्णता होगी। सुख होने पर आह्लाद की अनुभूति होगी और दुःख होने पर कष्ट की अनुभूति होगी। विकल्पयुक्त मन में यही होगा, और कुछ हो नहीं सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु जैसे ही हमने मन को विकल्प से खाली कर दिया, फिर चाहे लाभ हो या अलाभ, सुख हो या दुःख, कुछ भी अन्तर नहीं आएगा। क्योंकि जहां अन्तर आ रहा था, उसे तो हमने समाप्त कर ही डाला। जो अन्तर को पकड़ रहा था, उसे तो हमने नष्ट कर ही दिया। अब अन्तर करे कौन ? अन्तर करने वाला ही नहीं रहा। अन्तर करने वाला था विकल्प। विकल्प-चेतना को समाप्त कर दिया। तब बाहर से जो घटित हो रहा है, उसे पकड़ ही नहीं रहा है तो अन्तर आयेगा कैसे ? अन्तर तो तब आए जब उसे पकड़ने वाला मौजूद हो। पकड़ने वाला तो मर गया, समाप्त हो गया, घर छोड़कर चला गया, अब अन्तर क्या आयेगा ? निर्विकार अवस्था में रहकर महावीर ने कष्ट सहा था, इसलिए अन्तर नहीं आया। अगर वे सविकल्प अवस्था में रहते तो अन्तर अवश्य आता, फिर चाहे महावीर हों या कोई दूसरा। सम वह रह सकता है, जिसका मन निर्विकल्प होता है।

समता और निर्विकल्प अवस्था

समता और निर्विकल्प अवस्था—दोनों में तालमेल है। हम सामायिक का अनुष्ठान करते हैं और मन को निर्विकल्प नहीं करते है तो सामायिक का वह परिणाम, लाभ-अलाभ में सम, सुख-दुःख में सम, निन्दा-प्रशंसा में सम, जीवन-मरण में सम, मान-अपमान में सम रहना नहीं होगा। यह स्थिति प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि हमने मन को तो खाली किया नहीं, मन के विकल्पों को छोड़ा नहीं। विकल्प जब तक रहेगा, वह उसे पकड़ेगा। सामायिक समाधि तब प्राप्त होती है जब मन को हम निर्विचार कर लेते हैं। आप यदि ध्यान दें तो देखेंगे कि अशान्ति और विकल्प साथ-साथ जन्म लेते हैं। अशान्ति कोई अलग वस्तु नहीं है। अशान्ति और विकल्प एक साथ पैदा होते हैं। थोड़ा विकल्प बढ़ता है तो अशान्ति भी थोड़ी मात्रा में बढ़ जाती है। इस अवस्था में कुछ भी स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता। जब विकल्प तीव्र होता है तब अशान्ति की मात्रा भी तीव्र हो जाती है। जब विकल्प की मात्रा के साथ-साथ अशान्ति की मात्रा भी बढ़ती जाती है तब वह अखरने लगता है। व्यक्ति अशान्ति को मिटाना चाहता है, पर अशान्ति तब तक ही नहीं मिटती जब तक विकल्प नहीं मिटता। अशान्ति और विकल्प एक सिक्के के दो पहलू

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

हैं। विकल्प को मिटाए बिना अशान्ति को नहीं मिटाया जा सकता।

वस्तु और प्रकंपन

साधना में एक बात मुख्य है, वह बात है मन को खाली करने की। सुख-दुःख है क्या ? हमें इस पर सोचना है। हम आज के वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखें या महावीर के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में देखें, हमें यह ज्ञात होगा कि हमारा सारा जीवन प्रकम्पनों का जीवन है। बाह्य जगत् में प्रकम्पन हैं, वाइब्रेशन्स हैं और भीतरी जगत् में भी प्रकम्पन हैं। प्रकम्पन ही वास्तव में सुख-दुःख पैदा करते हैं। आपके मुंह में कोई चीज गयी। स्वाद आया। स्वाद क्या है–इसे भी समझ लेना है। कोई चीज जीभ पर रखी। सारी जीभ स्वाद नहीं लेती। जीभ के अगले हिस्से पर कुछेक बिन्दु हैं, जो स्वादानुभूति करते हैं। वस्तु का स्पर्श होते ही उनमें प्रकम्पन होता है और तब स्वाद की अनुभूति होने लग जाती है। यदि उनका प्रकम्पन बन्द हो जाए तो आप कुछ भी खा लें, स्वाद नहीं आयेगा। मुनि को आहार किस प्रकार करना चाहिए–इसकी मीमांसा में आगम कहते हैं कि जैसे सांप बिल में सीधा प्रवेश कर जाता है वैसे ही मुनि भी कवल को, मुंह में इधर-उधर घुमाए बिना, निगल जाए। इसको शास्त्रीय भाषा में **'बिलमिव पन्नगभूए'** कहा जाता है। इस अर्थ को हृदयंगम करने में पहले कठिनाई होती थी; परन्तु जब प्रकम्पनों के संदर्भ में देखता हूं तो लगता है कि प्रकम्पन पैदा न करने पर स्वाद की अनुभूति नहीं होती। हमारी हर प्रवृत्ति प्रकम्पन की प्रवृत्ति है। सुख कब होता है ? केवल वस्तु से सुख या दुःख नहीं होता। वस्तु और प्रकम्पन– इन दोनों का योग होता है तब सुख या दुःख का अनुभव होता है। अगर इनका योग न हो तो न सुख की अनुभूति होती है और न दुःख की अनुभूति होती है। आदमी अनमना है, चिंतातुर है या कोई बाहरी रोग से ग्रस्त है या आपत्ति में हैं, उस समय भी वह खाता है, किंतु स्वाद का अनुभव नहीं करता। अनमना होने के कारण उसका ध्यान अन्यत्र केन्द्रित रहता है, इसलिए खा लेने पर भी उसे पता नहीं रहता कि उसने कुछ खाया है। अनमने व्यक्ति को न सुख का अनुभव होगा और न दुःख का। प्रकम्पन पैदा हुआ और हमारा ध्यान उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकम्पन से जुड़ गया, तब सुख या दुःख का अनुभव होता है।

सामायिक है प्रकंपनों का निरोध

प्रकम्पन वस्तु के योग से भी पैदा हो सकता है, कल्पना से भी हो सकता है और वैज्ञानिक पद्धति से भी हो सकता है, यान्त्रिक पद्धति से भी हो सकता है। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'साइटर' ने प्रकम्पनों का सूक्ष्मतम अध्ययन किया। उसने उन प्रकम्पनों के आधार पर एक यन्त्र बनाया। उसका नाम रखा 'विद्युत् वाहक इलेक्ट्रॉन'। उस यन्त्र से सम्बन्धित एक तार चूहे के माथे में लगाया और एक बिजली का बटन उसकी टांग के पास लगा दिया। बटन को दबाते ही चूहे में हरकतें होने लगीं। परिणाम यह आया कि चूहों को देखकर उसके मन में जैसे प्रकम्पन पैदा होते थे, वैसे ही प्रकम्पन बटन के दबाने से होने लगे। वैज्ञानिक दिन भर बटन दबाता रहा और चूहे में वैसी हरकतें होती रहीं। अन्त में चूहा थककर चूर हो गया। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि घटना से जो प्रकम्पन पैदा होते हैं, वैसे ही प्रकम्पन यन्त्रों के द्वारा भी पैदा किए जा सकते हैं।

कल्पना में जो रस है, वह सही घटना में नहीं है। कल्पना में होता क्या है? जो सही घटना में प्रकम्पन पैदा होते हैं, वे कल्पना में भी पैदा होते हैं। 'मानसिक भोग' और क्या है? वह प्रकम्पन ही तो है। सुख का अनुभव होता है प्रकम्पन से; फिर चाहे वह प्रकम्पन यथार्थ वस्तु से हो या विद्युत्वाही किसी यंत्र से हो। मुख्य बात है प्रकम्पन पैदा करने की। हमारे भीतर भी प्रकम्पन पैदा होते हैं और उनके साथ ध्यान जुड़ने के कारण हमें सुख-दुःख की अनुभूतियां होती हैं।

सामायिक का अर्थ है–प्रकम्पनों को समाप्त करना। प्रकम्पनों को बन्द कर देना, उत्पन्न न होने देना, यह है समभाव। इसे 'संवर' भी कहा जा सकता है।

निर्जरा : प्रकम्पन की प्रक्रिया

साधना की दो स्थितियां हैं–संवर और निर्जरा। निर्जरा के लिए एक शब्द है–विधूननम्–प्रकम्पित कर देना। जैसे पक्षी पंखों को हिलाकर सारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजःकणों को धुन डालता है, हिला डालता है, वैसे ही जो निर्जरा करने वाला है, वह अपनी सत्प्रवृत्ति के द्वारा कर्मरजों को धुन डालता है, प्रकम्पित कर, झाड़ कर साफ कर देता है। निर्जरा प्रकम्पन की प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति अवांछनीय प्रकम्पनों के प्रति वांछनीय प्रकम्पन पैदा कर, शक्तिशाली प्रकम्पन पैदा कर उसको समाप्त कर देता है, पुराने संग्रह को समाप्त कर देता है।

सामायिक : निरोध की प्रक्रिया

दूसरी प्रक्रिया है संवर की। इससे प्रकम्पन बन्द हो जाते हैं। सामायिक संवर की प्रक्रिया है। इसमें प्रकम्पन निरुद्ध हो जाते हैं, शान्त हो जाते हैं। जैसे ही मन समभाव की स्थिति में जाता है, वैसे ही प्रकम्पन बन्द हो जाते हैं। जब प्रकम्पन बन्द हो जाते हैं तब चाहे लाभ हो या अलाभ, सुख हो या दुःख, निन्दा हो या प्रशंसा, हमारे लिए कुछ भी नहीं हैं। क्योंकि उन प्रकम्पनों को ग्रहण करने वाले द्वार को हमने बन्द कर दिया। खिड़की बन्द कर दी, अब चाहे आंधी चले या तूफान, भीतर कुछ भी नहीं आयेगा। समायिक समाधि प्रकम्पनों को बन्द कर देने की प्रक्रिया है। उस समय में ऐसी समाधि घटित होती है कि जिस समाधि पर कोई आंच नहीं आती। कोई भी बाहर की स्थिति उसमें क्षोभ पैदा नहीं कर सकती।

प्रकंपन का मूल कारण

सामायिक के लिए तीन बातें जरूरी हैं–

१. मन की शिथिलता–मन को विकल्पों से खाली कर देना।

२. शरीर की शिथिलता–शरीर को तनावों से मुक्त कर देना।

३. प्रकम्पनों का अग्रहण।

शरीर की चंचलता ही सारे प्रकम्पनों का मूल कारण है। तत्त्व की दृष्टि से विचार करें तो प्रवृत्ति वास्तव में एक ही है और वह है शरीर की। हम कहते हैं कि प्रवृत्तियां तीन हैं–मन की प्रवृत्ति, वचन की प्रवृत्ति और शरीर की प्रवृत्ति। श्वास की प्रवृत्ति को हमने प्रवृत्ति माना ही नहीं। यथार्थ में प्रवृत्तियां तीन नहीं हैं, एक ही है शरीर की प्रवृत्ति। मन और वचन की जो प्रवृत्ति है, उसका काम है–शरीर के द्वारा प्राप्त सामग्री को छोड़ देना। इसलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तव में प्रवृत्ति एक शरीर की ही है। ये दो योग–मन का योग और वचन का योग तो गौण हैं। प्रवृत्ति मात्र के तीन अंग हैं–लेना, परिणमन करना और छोड़ना। ग्रहण, परिणमन और विसर्जन–ये तीनों काम एक शरीर के ही होते हैं। मनोयोग और वचन योग का काम केवल विसर्जन है, ग्रहण या परिणमन नहीं है। ग्रहण करने का कार्य काययोग का है, शरीर की प्रवृत्ति का है। मनोवर्गणा के पुद्गल और वचन वर्गणा के पुद्गल–इनका ग्रहण भी काययोग के द्वारा ही होता है।

सामायिक की पद्धति

शरीर मूलभूत वस्तु है। शरीर की चंचलता छूटती है तो सब कुछ ठीक हो जाता है, प्रकम्पन भी कम हो जाते हैं। सामायिक समाधि का मूल कारण है शरीर की स्थिरता। सामायिक के बत्तीस दोष माने जाते हैं। शरीर का हिलाना-डुलाना, सहारा लेना, चंचल करना आदि-आदि सामायिक के दोष हैं। सामायिक में शरीर स्थिर होना चाहिए। शरीर जितना स्थिर और शान्त होगा, उतनी ही सामायिक समाधि प्राप्त होगी, सिद्ध होगी। शरीर चंचल रहेगा तो कुछ भी नहीं बनेगा। सामायिक में शरीर स्थिर और मन खाली होना चाहिए। तीनों बातें साथ में होती हैं तब सामायिक समाधि निष्पन्न होती है।

शरीर को शिथिल करना, मन को खाली करना, प्रकम्पनों को ग्रहण न करना, उत्पन्न न होने देना–यह है सामायिक की पद्धति या सामायिक न समाधि का उपाय।

तब होती है सिद्धि

केवल जान लेने, उच्चारण कर देने या उपदेश दे देने से समता निष्पन्न नहीं होती। हम जो चाहते हैं, वह निष्पन्न नहीं होता। वह होता है क्रिया के द्वारा। सिद्धि के लिए हमारे आचार्यों ने तीन उपाय बतलाए हैं–क्रिया, मन्त्र और औषध। क्रिया का अर्थ है–एकाग्रता, स्थिरता। तीन घंटे तक एक विषय पर एकाग्रता करें तो एकाग्रता की सिद्धि मानी जाती है। इसका नाम है क्रिया की सिद्धि। यह प्रथम बार में ही नहीं हो जाती। अभ्यास इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिशा में हो कि हमें उस सिद्धि की स्थिति तक पहुंचना है। जब साधक एक घंटे की एकाग्रता साध लेता है, तब आगे क्या करना है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि उसे अपना मार्ग स्वयं दीखने लग जाता है। एक विषय पर एक घंटा एकाग्र होना सामान्य बात नहीं है। वह कठोर साधना से ही फलित होने वाली सिद्धि है। जो इस स्थिति का स्पर्श कर लेता है, उसके लिए कोई उपदेश आवश्यक नहीं होता। **'उद्देसो पासगस्स णत्थि'**—द्रष्टा के लिए उपदेश आवश्यक नहीं होता। वह साधक तो उस स्थिति में चला गया, जहां उसे कोई भी उपाय विचलित नहीं कर सकता। पूर्णसिद्धि तीन घंटे से प्राप्त होती है। तीन घंटे तक इस प्रकार की सामायिक करें, उसमें समभाव से एकाग्र हो जाएं। उस क्रिया से समता की सिद्धि होगी। यह बहुत कठिन प्रक्रिया है। यदि बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उसकी प्राप्ति का साधन छोटा नहीं हो सकता।

दूसरी बात है—मन्त्र द्वारा सिद्धि। मन्त्र की सिद्धि के लिए भी वही बात है। मन्त्र का जप भी तीन घंटे तक पहुंच जाए तो सिद्धि हो सकती है।

तीसरी बात है—औषध के द्वारा सिद्धि। यह सरल है। वनस्पति जगत् का भी बड़ा चमत्कार है। इसके द्वारा भी सिद्धि होती है। अभी तक वनस्पति का उतना धर्म ज्ञात नहीं है कि किस प्रकार की वनस्पतियों के द्वारा उन सिद्धियों को प्राप्त किया जा सकता है। ग्रन्थों में अनेक प्रकार के वर्णन मिलते हैं पर जब तक उनका ठीक प्रयोग न हो जाए, परीक्षण न कर लिया जाए, तब तक यही मानना पड़ेगा कि ग्रन्थों में अतिशयोक्तियां बहुत हैं। प्रयोग और परीक्षण के बाद ही निष्कर्ष सामने आ सकता है।

मन को खाली करें

ये तीन साधन हैं। वनस्पति के विषय में हमारी जानकारी अल्प है इसलिए इसे छोड़ दें तो दो ही साधन रह जाते हैं—एक क्रिया का और दूसरा मन्त्र का। इन साधनों के द्वारा समभाव का प्रयास किया जा सकता है। मैं यह नहीं कहता कि आप एक साथ तीन घंटे का अभ्यास या एक घंटे का अभ्यास कर लें। प्रारम्भ में आप मन को निर्विकल्प करने के संकल्प से बैठे। आधा या एक मिनट तक मन में कोई विकल्प न आए—ऐसा अभ्यास प्रारम्भ करें। उस अभ्यास-दशा में भी आप स्वयं अनुभव करेंगे कि उस समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके मन में सुख-दुःख का कोई भाव नहीं है, बाहर की घटना का कोई प्रभाव नहीं है। यदि पांच मिनट तक मन खाली रह सकता हो, कोई विकल्प न आता हो तो बाहर में कुछ भी घटित क्यों न हो, आप पर उसका असर नहीं होगा। यह स्थिति होगी निरोध की कि इधर से किवाड़ बन्द कर दिया, उधर क्या हो रहा है, कुछ भी पता नहीं चलेगा।

कुंभक में यह स्थिति घटित होती है। आप कुंभक के द्वारा या बिना कुंभक किए ही, अभ्यास के द्वारा मन को खाली कर दें, शून्य कर दें। आप चलते हुए भी ऐसा कर सकते हैं। मन को खाली कर आप कहीं भी जाएं, वहां क्या हो रहा है, उसका भान नहीं होगा।

सामायिक की साधना शान्ति और मानसिक सन्तुलन की साधना है, यह कषाय-मुक्ति की साधना है। सामायिक की सिद्धि के लिए आप इन उपायों को स्मृति में रखें—शरीर का शिथिलीकरण करें, मन को खाली करें। यह बार-बार करें। दिन में कई बार करें। ऐसा करने पर सामायिक समाधि या सामायिक के द्वारा समाधि या सामायिक में समाधि क्या होती है, यह आप अपने ज्ञात हो जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक के साधक तत्त्व

सहज प्रश्न होता है–जप, ध्यान आदि का प्रयोग क्यों ? इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है–समता की साधना। यह जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। समता से बड़ी दुनिया में कोई उपलब्धि नहीं है। धन मिला, सत्ता मिली, सब कुछ मिला, किन्तु समता नहीं मिली तो सुख नहीं मिला, आदमी दुःख में ही जीएगा।

निकटतम हेतु

समता के बिना प्रत्येक मनुष्य दुःख का जीवन जीता है। धन, पदार्थ, सत्ता, अनुकूल योग–ये सारे सुख के परम्पर हेतु बन सकते हैं, अनंतर नहीं। सुख के निकट हेतु हो सकते हैं, निकटतम नहीं। सुख का जो निकटतम साधन है, वह है समता। समता है तो पदार्थ भी सुख दे सकता है, सुख का कारण बन सकता है। यदि समता नहीं है तो हजार पदार्थ होने पर भी मन बेचैन, उदास और संतप्त बना रहता है। इन सबको मिटाने के लिए आवश्यक है समता की साधना। सास बहू में प्रतिदिन कलह होता रहता है। पूरा दिन तनाव में बीत जाता है। रोटी भी खाता है, ठंडा पानी भी पीता है, मकान भी एयर-कंडीशन है, सब कुछ है, पर सास बहू में, बाप और बेटे में, भाई-भाई में कलह चलता है तो ऐसा लगता है सारा जीवन दुःख में बीत रहा है, मानसिक शान्ति नहीं है, समाधि नहीं है। अनेक लोग इस भाषा में कह भी देते हैं–इस जीवन से तो मरना अच्छा है। इस जीवन में क्या मिला ? दुःख, अशांति और कलह का जीवन कोई जीवन है ? व्यक्ति को सब कुछ सुविधा-सामग्री मिली किन्तु उसका भोग करने में जो शांति का वातावरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाती है, वह नहीं मिली, समता या संतुलन की बात नहीं मिली, तो सुख का सपना अधूरा रह जाता है। यदि समता सध जाती है, सुविधा नहीं मिलती है तो भी मनुष्य का जीवन आनन्द से परिपूर्ण रह सकता है। समता है तो सुख है। समता नहीं है तो सुख नहीं है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध तथ्य है। इसके लिए किसी तर्क की अपेक्षा नहीं है।

समता : सुखानुभूति

जिस व्यक्ति ने समता को साध लिया, वह अल्प साधनों का जीवन जीते हुए भी सुख और शांति का जीवन जीता है। जिसके पास सब कुछ है, किन्तु समता नहीं है, वह दिन-रात तनाव का जीवन जीता है। वह कहता है—मैं आत्महत्या की बात सोच रहा हूं, तलाक की बात सोच रहा हूं, भाई पर मुकदमा करने की बात सोच रहा हूं। ये जो सारी स्थितियां आती हैं, कलह, अभ्याख्यान, दोषारोपण, चुगली, झठ, चोरी—ये जितनी प्रवृत्तियां हैं, वे मनुष्य को संताप में ले जाती हैं, दुःखी बनाती हैं। इन वृत्तियों के आचरण का नाम ही विषमता है। ये वृत्तियां मन को विषम बना देती हैं, मन का रस सोख लेती हैं। जितनी सावद्य—पापकारी प्रवृत्तियां हैं, वे मानसिक विषमता को जन्म देती हैं। विषमता पैदा होती है तो सुखानुभूति कम हो जाती है। जितनी-जितनी समता कम, उतनी-उतनी सुखानुभूति कम, जितनी-जितनी समता अधिक, उतनी-उतनी सुखानुभूति अधिक, यह एक समीकरण है।

समता की साधना का अर्थ

प्रश्न है—मन में सुख की बात कहां से आती है? मन सुखी नहीं होता है तो शरीर का सुख भी कम हो जाता है। जब-जब ईर्ष्या की आग मानव के मन में जलती है, उसमें जल-भुनकर व्यक्ति अपना सुख-चैन खो देता है। प्रसिद्ध घटना है, एक व्यक्ति का मकान गांव में सबसे ऊंचा था। कुछ वर्ष बाद दूसरे का मकान ऊंचा बन गया। वह ऊंचा मकान उसकी ईर्ष्या का कारण बन गया। इस ईर्ष्या ने उसके सारे सुख छीन लिये। प्रतिशोध की भावना, क्रोध और अहंकार की भावना—ये मानसिक ग्रन्थियां विषमता पैदा करती हैं। भगवान् महावीर ने अठारह ग्रन्थियों का उल्लेख किया। उन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा–ये ग्रंथियां सावद्य हैं, पाप की परम्परा को बढ़ाने वाली हैं। समता की साधना का अर्थ यही है कि ये ग्रंथियां कमजोर पड़ जाएं, रेशम की गांठ घुली न रहे, खुलती चली जाए।

सामायिक के दो पक्ष

सामायिक के दो पक्ष हैं। पहला पक्ष है–बाधक तत्त्वों का वर्जन। दूसरा पक्ष है–साधक तत्त्वों का प्रयोग। वर्तमान में कुछ ऐसा हो गया है–सामायिक करने वाला बाधक तत्त्वों के वर्जन की बात सोचता है, किंतु साधक तत्त्वों के प्रयोग की बात नहीं सोचता। व्यक्ति प्रत्याख्यान करता है– मैं अमुक अवधि तक सामायिक की साधना करूंगा और उसके बाधक तत्वों का वर्जन करूंगा। यह परम्परा चल रही है किंतु उसके साथ दूसरी बात नहीं चल रही है। बाधक तत्त्वों का वर्जन और साधक तत्त्वों का प्रयोग, दोनों बातें सामायिक में चलनी चाहिए।

अकेलेपन की अनुभूति

इस संदर्भ में साधक तत्त्वों का विमर्श आवश्यक है। एक साधक तत्त्व है– एकत्व अनुप्रेक्षा। समता तब आएगी, जब 'मैं अकेला हूं'–यह भावना जीवन में व्याप्त हो जाएगी। क्रोध, अहं, घृणा, ईर्ष्या–ये सारी प्रवृत्तियां क्यो होती हैं ? इसलिए होती हैं कि हम इस बात को भूल जाते हैं–मैं अकेला हूं। सामायिक का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–मैं अकेला हूं। जब अकेला है, तब विषमता कहां से आएगी ? व्यक्ति अकेला है तो वह क्रोध किसके साथ करेगा ? कलह और घृणा किसके साथ करेगा ? आत्मा अकेली है, वह अकेली आती है और अकेली जाती है, यह एकत्व बोध हृदयंगम हो जाये तो समस्या की जड़ समाप्त हो जये। जब भी समस्या आएगी, व्यक्ति यह सोचेगा–मै अकेला हूं, दूसरा कोई नहीं है, मैं किससे लड़ रहा हूं, किसके साथ राग-द्वेष कर रहा हूं ? मैं जिसके साथ लड़ रहा हूं, वह प्रतिबिम्ब है, आगन्तुक है। जब अनुप्रेक्षा का अभ्यास परिपक्व बन जाएगा, भीतर से आवाज आएगी–तुम अकेले हो। यह अकेलेपन की अनुभूति समता की साधना को पुष्ट बनाये रखती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनित्य अनुप्रेक्षा

दूसरा साधक तत्त्व है—अनित्य अनुप्रेक्षा। सब पदार्थ अनित्य हैं, जिसका संयोग होता है, उसका वियोग निश्चित है। जैसे-जैसे इस अनुप्रेक्षा का अभ्यास प्रखर बनेगा, मूर्च्छा कम होती चली जायेगी। यदि यह अभ्यास नहीं बढ़ता है तो मूर्च्छा प्रबल बनी रहती है। एक वृद्ध आदमी से मैंने कहा—भाई! अब थोड़ा मोह कम करो। उसने कहा—महाराज! और सब कुछ छूट जाता है, किन्तु यह मोह नहीं छूटता, प्रगाढ़ बनता है। जैसे-जैसे अवस्था बीतती है, मोह प्रगाढ़ बनता चला जाता है। युवा में शायद उतना मोह नहीं होता। एक युवक का धन चला जाता है तो वह सोचता है, धन हाथ का मैल है, फिर कमा लूंगा। यदि बूढ़े आदमी का धन चला जाये तो उसे ऐसा लगता है, मानो प्राण ही निकल गया है। यदि अनित्य अनुप्रेक्षा का अभ्यास पुष्ट होगा तो मोह कम होना शुरू हो जाएगा।

अभिनव सामायिक

सामायिक का अर्थ मुंह बांध कर बैठ जाना ही नहीं है। एक प्रयोग कराया जाता है अभिनव सामायिक का। उसमें ये दोनों बातें होती हैं— बाधक तत्वों का वर्जन और साधक तत्त्वों का प्रयोग। सामायिक का जो पुराना ढर्रा चल रहा है, उसमें बदलाव का एक प्रयोग है अभिनव सामायिक। लोग केवल एक बात को करते हैं, दूसरी को छोड़ देते हैं, इसलिए सामायिक का जो परिणाम आना चाहिए, वह नहीं आ पाता। व्यक्ति रोज सामायिक करता है, पांच वर्ष, दस वर्ष तक प्रतिदिन सामायिक करता चला जाता है और परिवर्तन भी कुछ नहीं आता, लड़ाई-झगड़ा, कलह, क्रोध—सब कुछ वैसे ही चलता रहता है। इस स्थिति में दूसरे व्यक्ति के मन में यह प्रश्न उठता है—मैं सामायिक नहीं करता और अमुक व्यक्ति सामायिक करता है। दोनों में अन्तर क्या रहा? एक धार्मिक व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होना चाहिये। वह नहीं होता है तो प्रश्न उभर आता है। कारण यही है—व्यक्ति सामायिक के साथ साधक तत्त्वों का प्रयोग नहीं करता। जब तक सामायिक के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग नहीं जुड़ेगा, परिवर्तन की साधना नहीं जुड़ेगी, इन प्रश्नों

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

को समाहित नहीं किया जा सकेगा। सामायिक का जो फल मिलना चाहिए, वह नहीं मिल पायेगा।

मनोविज्ञान की भाषा

हम सामायिक की साधना को प्रज्वलित रूप दें। समता की साधना को एक व्यवस्था के साथ करें, संकल्प के साथ करें। हमें इस तथ्य का भी स्पष्ट बोध होना चाहिए–विषमता के कारण ये हैं। व्यक्ति सामायिक करता चला जाए और उसे यह ज्ञात न हो कि विषमता के कारण क्या हैं? सावद्य प्रवृत्ति आखिर है क्या? इस स्थिति में वह समता को कैसे साध पाएगा? सावद्य प्रवृत्ति का एक वर्गीकरण भगवान् महावीर ने दिया, उसे मनोविज्ञान की भाषा में कहा जाये तो वह निषेधात्मक भावों का एक श्रेष्ठ वर्गीकरण है। मनोविज्ञान ने दो प्रकार के भावों का प्रतिपादन किया– विधायक और निषेधात्मक। अच्छे भावों का वर्गीकरण जितना सामायिक के साथ जुड़ा है, उतना मनोविज्ञान में भी नहीं है। अठारह सावद्य प्रवृत्तियों का, मनोविज्ञान की भाषा में निषेधात्मक भावों का चित्र हमारे सामने स्पष्ट रहे, हम एक-एक सावद्य प्रवृत्ति को जान लें, यह सबसे पहले अपेक्षित है।

वृत्ति-परिष्कार का सूत्र

सावद्य प्रवृत्ति का ज्ञान होने के बाद, हम सामायिक प्रारंभ करें और उसमें यह चिंतन करें–प्राणातिपात–हिंसा एक निषेधात्मक भाव है, सावद्य प्रवृत्ति है। इस वृत्ति को कैसे मिटाया जा सकता है? कोई भी आदमी दिन भर हिंसा नहीं करता। वह कभी करता है, किसी प्रसंग में करता है। व्यक्ति अपने घर में बैठा पुस्तक पढ़ रहा है, वह कौन सी हिंसा कर रहा है? वह सारे दिन हिंसा नहीं करता, किन्तु हिंसा की जो वृत्ति है, प्राणातिपात पापस्थान है; उस वृत्ति को कैसे मिटाए, उस गांठ को कैसे खोला जाए, यह चिन्तन सामायिक में होना चाहिए। एक दिन नहीं, दस-बीस दिन, पचास दिन सामायिक में यह चिंतन चले– इस वृत्ति को कैसे कमजोर किया जाए, दुर्बल बनाया जाए। चिन्तन करते-करते, अनुप्रेक्षा करते-करते अपने आप रास्ता निकल आता है। हिंसा का संस्कार दुर्बल होने लग जाता है। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य वृत्तियों को भी परिष्कृत किया जा सकता है। सामायिक की साधना में एक-एक वृत्ति पर चिन्तन-मंथन, अनुप्रेक्षा की जाए तो चिन्तन करते-करते चिंतामणि हाथ में आ जाती है। यह जरूरी नहीं है कि एक दिन में परिवर्तन आ जाए, लेकिन दृढ अध्यवसाय के साथ सतत चिन्तन चलता रहे तो परिवर्तन निश्चित होता है।

समता की साधना : परिवर्तन की प्रक्रिया

चिन्तन ही चिन्तामणि है। इसके अतिरिक्त और चिन्तामणि क्या है ? हमारे पास ऐसी दुर्लभ वस्तुंए हैं। अनेक लोग कहते हैं, चिन्तामणि मिल गया, कल्पवृक्ष मिल गया। कल्पना के सिवाय कल्पवृक्ष क्या है ? कल्पना की शक्ति जाग गई, कल्पवृक्ष हमारे हाथ में आ गया। एक कामना की, एक संकल्प को दोहराया, एक महान् उद्देश्य को पूरा किया, कामधेनु हमारे हाथ में आ जाती है। ये सब हमारे हाथ में हैं किन्तु समस्या यही है–हम प्रयोग करना नहीं जानते। यदि हम सामायिक करना जान लें तो समता की दिशा में आगे बढ सकते हैं। सम्भव है कि उसकी प्राप्ति में कुछ समय लग जाए। दुनिया में एक झटके में कोई परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन का एक क्रम होता है। ऐसा नहीं कि आज प्रातः बीज बोया और शाम को ही फसल तैयार हो जाए। एक क्रम होता है, किसान को यह विश्वास होता है–आज जिस बीज को बोया है, वह दो-ढाई महीने बाद भरपूर फसल देगा। यदि हम क्रम से चलें तो निश्चित निष्पत्ति होती है। हम निष्पत्ति को नहीं जानते, क्रम को नहीं जानते। समता की साधना का अर्थ है, परिवर्तन की प्रक्रिया को जान लेना, जिस आदत को बदलने के लिए जिस आलंबन की जरूरत है, उसका बोध हो जाना।

स्वभाव परिवर्तन का अमोघ उपाय

अठारह पाप–सावद्य प्रवृत्तियां हैं। इनको बदलने के लिए अठारह ही निरवद्य प्रवृत्तियां हैं। सामायिक के कम से कम अठारह साधक तत्त्व हैं, इससे ज्यादा भी हो सकते हैं। हम चुनाव करें और उनकी साधना करें। यह निश्चित है, अभ्यास के बिना परिवर्तन सम्भव नहीं है। एक अल्पबुद्धि वाला व्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी अभ्यास करते-करते आगे बढ जाता है और बुद्धिमान् आदमी भी अभ्यास के अभाव में पीछे रह जाता है। उद्योग, व्यवसाय, अध्यवसाय और अभ्यास– इन सबका प्रयोग करें, समता के सहयोगी तत्त्वों, निरवद्य प्रवृत्तियों का चुनाव करें। सावद्य प्रवृत्ति है निषेधात्मक भाव और निरवद्य प्रवृत्ति है विधायक भाव। इस भाषा में भी कहा जा सकता है– हिंसा एक पक्ष है, उसका प्रतिपक्ष है मैत्रीभाव। जैसे-जैसे मैत्रीभाव का विकास होगा, हिंसा स्वतः कम होती चली जाएगी। हमारी जितनी प्रवृत्तियां हैं, उन सबका प्रतिपक्ष है। ईर्ष्या का विकल्प है प्रमोद-भाव। जैसे-जैसे प्रमोद भावना बढ़ेगी, ईर्ष्या वैसे ही धुल जाएगी, जैसे राख से मांजने पर कांस्य की थाली। स्वभाव-परिवर्तन का अमोघ उपाय है– प्रतिपक्ष भावना। यदि मन में दृढ़ निश्चय और संकल्प हो तो व्यक्ति साधना करते-करते इतना बदल जाता है कि विषमता के कीटाणु समाप्त हो जाते हैं, समता के नए अंकुर प्रस्फुटित हो जाते हैं। एक दिन ऐसा लगता है– समता का कल्पवृक्ष हरा-भरा, शीतल छांव और मनोकामना की पूर्ति करने वाला बन गया है, जिसकी छाया में आनन्दपूर्वक जीवन जीया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक के बाधक तत्त्वों से कैसे बचें ?

सामायिक का अर्थ है–सावद्य योग का प्रत्याख्यान वह प्रवृत्ति, जो पाप-युक्त होती है, सावद्य कहलाती है ।

पाप अशुभकर्म का उदय है । पहले बंधा हुआ अशुभ कर्म उदय में आकर जब अशुभ फल देता है तब वह पाप कहलाता है । पाप अठारह प्रकार का है :

१. *प्राणातिपात*–प्राण-वियोजन से होने वाला कर्मबंध ।
२. *मृषावाद पाप*–झूठ बोलने से होने वाला कर्मबंध ।
३. *अदत्तादान पाप*–चोरी करने से होने वाला कर्मबंध ।
४. *मैथुन पाप*–अब्रह्मचर्य सेवन से होने वाला कर्मबंध ।
५. *परिग्रह पाप*–परिग्रह से होने वाला कर्मबंध ।
६. *क्रोध पाप*–क्रोध करने से होने वाला कर्मबंध ।
७. *मान पाप*–मान करने से होने वाला कर्मबंध ।
८. *माया पाप*–माया करने से होने वाला कर्मबंध ।
९. *लोभ पाप*–लोभ करने से होने वाला कर्मबंध ।
१०. *राग पाप*–राग करने से होने वाला कर्मबंध ।
११. *द्वेष पाप*–द्वेष करने से होने वाला कर्मबंध ।
१२. *कलह पाप*–कलह करने से होने वाला कर्मबंध ।
१३. *अभ्याख्यान पाप*–मिथ्या आरोप लगाने से होने वाला कर्मबंध ।
१४. *पैशुन्य पाप*–चुगली करने से होने वाला कर्मबंध ।
१५. *पर-परिवाद पाप*–निंदा करने से होने वाला कर्मबंध ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. *रति-अरति पाप*–असंयम में अरुचि और संयम में रुचि से होने वाला कर्मबंध ।

१७. *मायामृषा पाप*–माया सहित झूठ बोलने से होने वाला कर्मबंध ।

१८. *मिथ्यादर्शनशल्य पाप*–विपरीत श्रद्धा रूपी शल्य से होने वाला कर्मबंध ।

ये भेद वास्तव में पाप तत्त्व के नहीं किन्तु जिन कारणों से पाप-कर्म बन्धता है, उन कारणों के अनुसार बध्यमान अवस्था की अपेक्षा से पाप को अठारह भागों में विभक्त किया गया है । प्राणों का वियोग करना योग आश्रव कहलाता है और प्राण वियोग करने से जो कर्म बन्धता है, वह प्राणातिपात पाप कहलाता है । उस पुद्गल-समूह का आत्मा के साथ सम्बनध होने का हेतु प्राण-वियोजन है । यदि आत्मा के द्वारा प्राण-वियोजन नहीं किया जाता, तो पुद्गल-समूह भी आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकता, अतः उस क्रिया से जो कर्म बन्धता है, वह उसी क्रिया के नाम से पुकारा जाता है ।

जिस कर्म के उदय से जीव हिंसा करता है, असत्य बोलता है तथा उसी प्रकार अन्य पाप करता है, उस कर्म को प्राणातिपात पाप-स्थान, मृषावाद पाप-स्थान आदि कहा जाता है ।

प्रगति का पहला सूत्र : अपने आपको देखो

सावद्य प्रवृत्ति से विरति का पहला सूत्र है स्व-दर्शन । एक विद्यार्थी मेरे पास आया । उसने कहा–'मैं प्रगति करना चाहता हूं । मैं जैसा हूं, वैसा रहना नहीं चाहता, जहां हूं, वहां रहना नहीं चाहता आगे बढ़ना चाहता हूं ।'

मैंने कहा–'तुम्हारा स्वप्न बहुत अच्छा है । मैं चाहता हूं–तुम अपने स्वप्न को साकार करो । प्रगति के सूत्रों का तुम बोध करो ।'

उसने जिज्ञासा प्रस्तुत करते हुए हुए पूछा-'प्रगति के सूत्र कौन-कौन से हैं ?'

प्रगति का पहला सूत्र है–'अपने आपको देखो । आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो । स्वयं के द्वारा स्वयं को देखो ।'

'क्या देखना है अपने आपको ? स्वयं को सब जानते हैं,' उसने कहा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जानते हैं, यह ठीक बात है। किन्तु नहीं जानते वह भी बहुत है। ज्ञात बहुत थोड़ा है, अज्ञात बहुत अधिक है। हम बहुत कम जानते हैं, जानने वाली बात अधिक है। समुद्र के ऊपरी सतह पर मिलेगा कीचड़, घास, केकड़े और सीपियां। जो आदमी गहराई में नहीं जाता, उसे समुद्र का अन्तस्तल नहीं मिलता। वह नहीं मिलता जो कि समुद्र का सार होता है। मूल्यवान् मोती समुद्र के तट पर सैर करने वाले व्यक्ति को नहीं मिल सकते। किसी खदान पर जाओ, वहां मिलेगा पत्थर और धूल। हीरा और पन्ना वहां प्राप्त नहीं होता। जो व्यक्ति खदान की गहरी खुदाई में चला जाता है, वहां उसे हीरे पन्ने प्राप्त हो सकते हैं। समुद्र की गहराई में अमूल्य चीज मिलती है। खदान की गहराई में बहुमूल्य चीज मिलती है। चेतना की गहराई में भी बहुमूल्य चीज मिलती है। जो व्यक्ति अपनी चेतना की गहराई में नहीं जाता, उसे कुछ भी नहीं मिलता। जो चेतना की सतह पर यात्रा करता है, उसे मिलता है क्रोध, अहंकार और वासनाएं। वहां सार की बात नहीं मिलती।

'अपने आपको देखो', इसका अर्थ है—चेतना की गहराई में प्रवेश करो, अन्तस्तल के गहरे में गोते लगाओ और भीतर जो कुछ छिपा पड़ा है, उसे अनावृत करो, बाहर लाओ और उपयोग करो।

अपने आपको देखने वाला सचमुच प्रगति के पथ पर आगे बढ़ जाता है। महानता अन्तस्तल में छिपी रहती है। क्षुद्रता सतह पर तैरती है। प्रत्येक व्यक्ति में महानता होती है पर वह सदा छिपी रहती है। जो चेतना की गहराई में गोता नहीं लगाता, वह महानता को उपलब्ध नहीं हो सकता। प्रौढ़ व्यक्तित्व, महान् व्यक्तित्व उसी को उपलब्ध होता है, जो निरंतर अपने आपको देखता है और अपनी गहराइयों में डुबकियां लगाता है।

लोगों का सामान्य विश्वास यही है कि आंख खुली रहने पर रंग दिखाई देता है, प्रकाश दिखाई देता है। आंख बन्द करने पर न रंग दिखाई देता है और न प्रकाश दिखाई देता है। आश्चर्य की बात है कि साधना-काल में आंखें बन्द होने पर भी रंग दिखाई देता है, प्रकाश दिखाई देता है। किसी को बल्ब का प्रकाश, किसी को ट्यूब लाइट का प्रकाश और विचित्र रंग दिखाई देते हैं। सामान्यतः इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता किंतु यह यथार्थ अनुभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जो व्यक्ति चेतना के सागर में प्रवेश करता है, उसे अज्ञात सत्य ज्ञात होने लग जाता है। जो व्यक्ति चेतना के सागर में डुबकियां लगाना प्रारम्भ करता है, उसे वह सब साक्षत् होने लग जाता है जो पहले नहीं जाना था, नहीं सोचा था।

महानता के बाधक तत्त्व

जो व्यक्ति अपने आपको नहीं देखता, वह दूसरों को देखता है। दूसरों को देखना महानता की अनुभूति की सबसे बड़ी बाधा है। क्रोध, अहंकार, माया, लोभ, ईर्ष्या, दोषारोपण, कलह, निन्दा–ये सब महानता के बाधक तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व दूसरों को देखने से फलित होते हैं। जो दूसरों को कम देखता है, उसे क्रोध कम आएगा। जो दूसरों को अधिक देखता है, उसे क्रोध अधिक आएगा। नौकर ने काम ठीक नहीं किया, क्रोध से तिलमिला उठेगा। पत्नी ने बात नहीं मानी, क्रोध से उबल पड़ेगा। सहयोगी ने काम ठीक नहीं किया, चेहरा तमतमा उठेगा। जब-जब आदमी दूसरों को देखता है और जब-जब उसकी रुचि टकराती है, तब-तब गुस्सा उभर आता है। क्रोध दूसरे को देखने का परिणाम है। अपने आपको देखना शुरू करें, क्रोध विलीन हो जाएगा। क्रोध आएगा ही नहीं। किस पर आएगा क्रोध ? क्रोध दूसरे से संबंध रखता है। क्रोध आने में दो चाहिए।

अहंकार भी दूसरे को देखने से आता है। अहंकार छोटों पर आता है। जब व्यक्ति दूसरे को अपने से छोटा देखता है तब अहंकार पैदा होता है। वह अनुभव करता है–इनके पास कुछ भी नहीं है। इनके पास कहां है ज्ञान ? इनकी जाति का महत्त्व ही क्या है। इनके पास कहां है वैभव और सत्ता ? इनके पास कहां है अधिकार ? मेरे पास कितना वैभव और सत्ता है ! मेरी जाति कितनी बड़ी है ! सदा तुलना में अहंकार जागता है और जब आदमी अपने से बड़ों को देखता है तब उसमें हीनभावना जाग जाती है। यह अहंकार का ही दूसरा पहलू है। अहं भावना और हीन भावना दोनों का जागरण होता है दूसरों को देखने के द्वारा, पर-दर्शन के द्वारा। जो व्यक्ति अपने आपको देखना नहीं जानता, जो व्यक्ति अपने आपको नहीं देखता, वह या तो अहंकार से भर जाएगा या हीनभावना से भर जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माया भी दूसरों को देखने का परिणाम है। माया अपने आप में तो होती नहीं। किसी को ठगना हो तो माया करनी पड़ती है। ठगने का प्रश्न न हो तो न छल होता है, न प्रवंचना होती है और न कपट होता है। जो दूसरे को देखता है, जहां दूसरे को ठगने का प्रश्न है वहां माया करनी पड़ती है, वहां बड़ा कपट करना पड़ता है।

लोभ दूसरे के दर्शन से होता है, दूसरे के दर्शन से जागता है। पदार्थ को देखता है तो लोभ जागता है। पर-दर्शन के द्वारा ही लोभ का विकास होता है।

बीमारियों का हेतु—प्रतिशोध की भावना

अपने आपको देखने वाला कलह नहीं कर सकता, दूसरे को देखने वाला कलह करता है। कलह दो में होता है। एक में कलह होता ही नहीं। जो अपने आपको देखता है, वह कलह कैसे करेगा। जब सामने दूसरे को देखता है तब तत्काल कलह की आग सुलग जाती है। कभी-कभी कलह करने का मन हो जाता है। आक्रोश उभर आता है। प्रतिशोध की भावना जाग जाती है। प्रतिशोध और कलह—ये भयंकर बीमारियां हैं। आज का मनोविज्ञान इस विषय में अनेक स्पष्टताएं हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है। अनेक शारीरिक बीमारियों का हेतु है—प्रतिशोध की भावना।

एक छात्र कॉलेज मे पढ़ता था। वह पढ़ने बैठता तब दस मिनट ठीक पढ़ता और तत्काल अपना आपा भूल कर बड़बडाने लग जाता। घर वाले परेशान, प्राध्यापक परेशान। सब परेशान थे। इस झुंझलाहट का कारण ज्ञात नहीं हो रहा था। डॉक्टरों ने इलाज किया पर व्यर्थ। व्यर्थ क्यों नहीं होगा? बीमारी है मन की और इलाज किया जाता है शरीर का। परिणाम कैसे आएगा? बीमारी कहीं और, इलाज कहीं और। बीमार कोई है और इलाज किसी और का हो रहा है। बीमारी कैसे मिटे? आज रोगी और डॉक्टर—दोनों को यह समझना आवश्यक है कि शारीरिक निदान के बाद मानसिक निदान भी होना चाहिए। आज कोई भी डॉक्टर या वैद्य तभी सफल हो सकता है जब वह रोगी का शारीरिक निदान के साथ-साथ मानसिक निदान भी करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और फिर औषधि का निर्देश देता है। अनेक बीमारियां मानसिक होती हैं और उनका निदान किया जाता है शारीरिक। कभी-कभी डॉक्टर मल-मूत्र और रक्त का परीक्षण कर लेने के पश्चात् भी रोगों का निर्णय नहीं कर सकता।

एक रोगी डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने सभी परीक्षण कर दिए। रोग की जानकारी नहीं हुई। डॉक्टर ने रोगी से कहा– परीक्षणों में रोग का कोई संकेत प्राप्त नहीं है। तुम्हारा रक्त शुद्ध है, लीवर ठीक काम कर रहा है। शरीर के शेष अवयव भी स्वस्थ हैं। तुम्हें कोई रोग नहीं है। डॉक्टर असमंजस में पड़ गया। जहां बीमारी है वहां वैज्ञानिक उपकरण पहुंच नहीं पाते। यंत्रों से यदि बीमारी पकड़ में नहीं आती है तो डॉक्टर बेचारा क्या करे। वह कह देता है, कोई रोग नहीं है।

रोगी निराश हो गया। अनेक बड़े-बड़े कारण डॉक्टरों के दरवाजे खटखटाए। सभी से एक ही उत्तर मिला– तुम नीरोग हो। तुम्हारे कोई रोग नहीं है। अन्त में वह रोगी एक मनोचिकित्सक के द्वार पर गया। मानसिक चिकित्सक ने पूछताछ की। बातचीत के दौरान चिकित्सक को रोग का मूल कारण ज्ञात हो गया। उसने जान लिया कि रोगी के दादा को किसी ने तिरस्कृत किया था, अपमानित किया था। रोगी देख रहा था। वह उस अपमानजनक स्थिति को सहन नहीं कर सका। उसका खून खौल उठा। उसके मन में एक गहरी गांठ लग गई कि जब तक उस व्यक्ति से बदला न ले लूं तब तक सुख-चैन की नहीं सोऊंगा। गांठ घुल गई। वह संवेदन तीव्र होता गया। घटना जब भी याद आती, वह आपा भूल जाता और उस ग्रंथि के प्रभाव में बड़बड़ाने लग जाता और एक बीमार जैसा व्यवहार करने लग जाता।

मानसिक चिकित्सक को रोग का उपादान मिल गया, मूल कारण ज्ञात हो गया, उसने कहा–देखो, रोग को मैंने पहचान लिया है। इस पर कोई औषधि कारगर नहीं होगी। जब तक प्रतिशोध की ग्रंथि खुल नहीं जाएगी, तुम बीमार ही बने रहोगे। बदले की भावना जब तक तुम्हारे मन से निकल नहीं जाती, तब तक कितना ही उपचार करो, रोग मिटेगा नहीं।

अनेक बीमारियां मानसिक दुर्बलताओं के कारण पनपती हैं। एक भाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मैंने पूछा–तुम स्वस्थ थे। हट्टे-कट्टे थे। तुम्हारा शरीर निगड था। ऐसी स्थिति कैसे हो गई ? आज पूरा शरीर थका-मांदा सा लगता है। क्या बात है ?

उसने कहा– मेरे परिवार का एक सदस्य अत्यन्त बीमार हो गया। उसकी स्थिति को देखकर मुझे बहुत बड़ा धक्का लगा। व न चल सकता है, न उठ-बैठ सकता है, न करवट ही बदल सकता है। ऐसी अवस्था से मुझे भयंकर चोट पहुंची। उसी दिन से मेरी यह स्थिति हो रही है। न खाया हुआ पचता है और न कोई पदार्थ अच्छा लगता है। उसी दिन मैं बीमार हो गया।

महत्त्वपूर्ण चिकित्सा-सूत्र

यह मन की बीमारी है, शरीर की नहीं। मन की बीमारियां अपने आपको न देखने के कारण पैदा होती हैं। 'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो' –यह एक छोटा-सा सूत्र लगता है, किन्तु यह इतना महत्त्वपूर्ण चिकित्सा-सूत्र है, इतनी कारगर औषधि है कि यदि सूत्र हृदयंगम हो जाता है तो ध्यान और ज्ञान समझ में आ जाता है, सामायिक समझ में आ जाती हैं, सारी चिकित्सा पद्धतियां और मेथड्स हमारे हाथ लग जाते हैं।

दूसरों पर आरोप लगाने के भयंकर परिणाम होते हैं। दूसरों पर आरोप लगाने वाला, दूसरों पर आरोप लगाने से पूर्व आरोपित हो जाता है और अनजाने ही मन उस बात को इतना पकड़ लेता है कि वह व्यक्ति अपराधी की भांति मन ही मन घुलने लग जाता है। यह एक प्रकार का कैंसर है। कैंसर का, अन्तर्व्रण का पता नहीं चलता, शल्य का पता नहीं चलता, पर भीतर ही भीतर वह इतनी विकृति पैदा कर देता है कि एक दिन जब विस्फोट होता है तब ज्ञात होता है कि कितना भयंकर परिणाम हुआ है।

अन्तःशल्य है कैंसर

भगवान् महावीर के दर्शन में पहला सूत्र है– निःशल्य होना, शल्य को समाप्त कर देना। अन्तः शल्य को आज की भाषा में कैंसर कहा जाता है। जब तक माया का शल्य, आकांक्षा का शल्य, मिथ्यादृष्टि का शल्य होता है तब तक धर्म की आराधना नहीं की जा सकती, तब तक व्रत का स्वीकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो सकता। तत्त्वार्थ सूत्र का प्रसिद्ध सूत्र है–**निःशल्यो व्रती**। व्रती वही होता है, जो निःशल्य है। जिसका भीतरी का कैंसर समाप्त हो जाता है, वही व्रती बन सकता है, अन्यथा कैंसर के रहते कोई व्रती नहीं बन सकता।

खतरनाक होता है चुगलखोर

पैशुन्य–चुगली भी दूसरों को देखने से होती है। आदमी दूसरे को देखता है, कुढ़ता है तब चुगली होती है। अपने आपको देखने वाला किसी की चुगली नहीं कर सकता। वह कभी चुगलखोर नहीं हो सकता। बड़ा खतरनाक होता है चुगलखोर। वह दो व्यक्तियों को आपस में भिड़ा देता है और स्वयं तटस्थ रहकर तमाशा देखता रहता है। वह ऐसी बात कहता है कि दोनों व्यक्तियों के मन फट जाते हैं।

चक्रवर्ती भरत चाहते थे कि उनके अनुज बाहुबली उनका शासन स्वीकार करें। उन्होंने दूत भेजकर यह संदेश कहलाया। बड़ी अप्रिय बात थी बाहुबली के लिए। उन्होंने अग्रज भाई का अनुशासन स्वीकार नहीं किया। दूत जाने लगा। बाहुबली ने कहा– दूत ! मेरे भाई भरत को एक बात कह देना कि वे अयोध्या मे बैठे हैं और मैं तक्षशिला में बैठा हूं। बीच में बहुत दूरी है। बीच मे अनेक पहाड़ और नदियां हैं। बीच मे समुद्र भी हैं। ये सब कुछ हमारे बीच में हों, कोई कठिनाई नहीं है। किन्तु हमारे बीच में कोई चुगलखोर न आए, यह ध्यान रखना है, अन्यथा अनर्थ होते देरी नहीं लगेगी–

भवतात् तटिनीश्वरोन्तरा,
विषमोऽस्तु क्षितिभृच्चयोन्तरा।
सरिदस्तु जलाधिकान्तरा,
पिशुनो माऽस्तु किलान्तरावयोः॥

चुगलखोर मधुरभाषी होता है। वह बात को इस ढंग से रखता है कि सामने वाले को विश्वास होने लगता है कि इससे बड़ा हित-चिन्तक कोई नहीं है। मेरे ही हित की बात कह रहा है। वह पिशुन उस हित-चिन्ता में अहित की ऐसी मीठी गोली देता है, ऐसी सुगर कोटेड पुड़िया देता है कि जो खाने में तो मीठी होती है, पर भीतर में कड़वा जहर होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासना जागृत हो गई। वे यक्षायतन के प्रकोष्ठ में छिप गए। मालाकार पुष्पांजलि-अर्पण के लिए नीचे झुका। उस समय छहों पुरुष बाहर निकले और मालाकर को कस-कर बांध दिया। अब बंधुमती अरक्षित थी। मालाकार का शरीर बंधा हुआ था, किन्तु उसकी आंखें मुक्त थीं और उससे भी अधिक मुक्त था उसका मन। गोष्ठिकों द्वारा बंधुमती के साथ किया गया अतिक्रमण वह सहन नहीं कर सका। वह भावुकता के चरम बिन्दु पर पहुंचकर बोला–'मुद्गरपाणि ! मैं तुम्हारी इस काष्ठ प्रतिमा से प्रवंचित हुआ हूं। मैंने व्यर्थ ही शत-शत कार्षापणों के पुष्प इसके सामने चढ़ाए हैं। यदि तुम यहां होते तो क्या तुम्हारे सामने यह दुर्घटना घटित होती ?' वह भावना के आवेश में इतना बहा कि स्मृति खो बैठा। अकस्मात् एक तेज आवाज हुई। मालाकार के बंधन टूट गए। उसका आकार विकराल हो गया। उसने मुद्गर उठाया और सातों को मौत के घाट उतार दिया। उसका आवेश अब भी शान्त नहीं हुआ।

अर्जुन की पुष्पवाटिका राजगृह के राजपथ के सन्निकट थी। उधर लोगों का आवागमन चलता था। पर यक्षायतन में घटित घटना का किसी को पता नहीं चला। मालाकर ने दूसरे दिन फिर सात पथिकों (छह पुरुष और एक स्त्री) की हत्या कर डाली। इस घटना से नगर में आतंक फैल गया। नगर के आरक्षिकों ने अनेक प्रयत्न किए पर उस पर नियंत्रण नहीं पा सके।

सात मनुष्यों की हत्या करना अर्जुन का दैनिक कार्यक्रम बन गया। महाराज श्रेणिक के आदेश से राजगृह में यह घोषणा हो गई–'मुद्गरपाणि-यक्षायतन की दिशा में कोई व्यक्ति न जाए।' इस घोषणा के साथ राजपथ अवरुद्ध हो गया। फिर भी कुछ भूले-भटके लोग उधर चले जाते और मालाकर के शिकार बन जाते। सात मनुष्यों की हत्या का यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा। छह गोष्ठिकों के पाप का प्रायश्चित न जाने कितने निरपराध लोगों को करना पड़ा।

जिस राजगृह को भगवान् अभय का पाठ पढ़ा रहे थे, जहां भगवान् की अहिंसा सुरसरिता की भांति सतत प्रवाहित हो रही थी, जिसका कण-कण श्रद्धा और संयम की सुधा से अभिषिक्त हो रहा था, वह नगर आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय से संत्रस्त, हिंसा से आतंकित और संदेह से उत्पीड़ित हो रहा था। यह महावीर के लिए चुनौती थी। यह चुनौती थी उनकी अहिंसा को, उनकी संकल्प-शक्ति को और उनके धर्म की समग्र धारणा को। भगवान् ने इस चुनौती को झेला। वे राजगृह पहुंचे और गुणशीलक चैत्य में ठहर गए। राजगृह के नागरिकों को भगवान् के आगमन का पता लग गया। पर कौन जाए ? कैसे जाए ? भगवान् महावीर और राजगृह के बीच में दिख रहा था सबको अर्जुन और उसका प्राणघाती मुद्गर। जनता के मन में उत्साह जागा पर समुद्र के ज्वार की भांति पुनः समाहित हो गया।

सुदर्शन का उत्साह शान्त नहीं हुआ। उसने भगवान् की सन्निधि में जाने का निश्चय कर लिया। उसकी विदेह-साधना बहुत प्रबल थी। वह मौत के भय से अतीत हो चुका था। उसने अपने माता-पिता से कहा–

'अम्ब-तात ! भगवान् महावीर गुणशीलक चैत्य में पधार गए हैं।

'वत्स ! हमने भी सुना है, जो तुम कह रहे हो।'

'अब हमारा क्या धर्म है ?'

'हमारा धर्म है भगवान् की सन्निधि में उपस्थित होना। किन्तु...।'

'अंब-तात ! भय के साम्राज्य में किन्तु का अन्त कभी नहीं होगा।'

'क्या जीवन का कोई मूल्य नहीं है ?'

'धर्म का मूल्य उससे बहुत अधिक है। अल्पमूल्य का बलिदान कर यदि मैं बहुमूल्य को बचा सकूं तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

'वत्स ! अभी मगध सम्राट् श्रेणिक भी भगवान् की सन्निधि में नहीं पहुंचे हैं, तब हमें क्यों इतनी चिन्ता मोल लेनी चाहिए ?'

'यह चिन्ता का प्रश्न नहीं है, यह धर्म का प्रश्न है। यह सत्ता का प्रश्न नहीं है, यह श्रद्धा का प्रश्न है। क्या श्रद्धा के क्षेत्र में मेरा स्थान सम्राट् से अग्रिम पंक्ति में नहीं हो सकता ?'

'क्यों नहीं हो सकता ?'

'फिर आप सम्राट् की ओट मे मुझे क्यों रोकना चाहते हैं ?'

'अच्छा वत्स ! तुम भगवान् की शरण में जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। निर्विघ्न हो तुम्हारा पथ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता। असीम और अनन्त कोई नहीं होता हर व्यक्ति के साथ सीमा जुड़ी हुई है। जो अपनी सीमा को नहीं जानता, वह प्रगति नहीं कर सकता। सीमा-बोध अत्यन्त आवश्यक है। हमारी शक्ति की सीमा, हमारे आनन्द की सीमा, हमारे सुख की सीमा, सब कुछ सीमित है। इस सीमा-बोध की विस्मृति के कारण प्रगति का यह रथ उल्टा चलने लग गया। एक आदमी को बुद्धि प्राप्त है। वह सोचता है–मुझे बुद्धि प्राप्त है तो मैं जितना चाहूं उतना धन इकट्ठा कर लूं। व्यावसायिक बुद्धि से वह धनकुबेर बन सकता है। यदि वह इस सीमा को नहीं जानता कि एक आदमी ज्यादा धन इकट्ठा करता है तो दूसरों को उसका कितना कटु परिणाम भोगना पड़ता है, तो उसका धनकुबेर होना खतरे में पड़ जाता है। इस सीमा-बोध के अतिक्रमण का अर्थ होता है– क्रांति, युद्ध, संघर्ष और लड़ाइयां। यदि सभी लोग अपनी सीमा में होते तो आज प्रगति का चक्र बहुत तेजी से घूमने लग जाता। जब प्रगति दूसरों के लिए प्रतिगति बन जाती है, पिछड़ेपन का कारण बन जाती है तब कठिनाइयां होती हैं। कुछ राष्ट्रों को भौगोलिकता के कारण प्राकृतिक सम्पदा की प्रचुरता प्राप्त है। उन्हें प्रगति करने की अनेक सुविधाएं प्राप्त हैं। बुद्धिमान् और व्यावसायिक बुद्धि-कौशल से सम्पन्न लोगों को वैभव प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त है। एक आदमी एक दिन में दस लाख रुपये कमा लेता है। एक-एक जूट मिल एक-एक दिन में लाखों रुपये कमा लेती है। कितना बड़ा उद्योग है। कमाई की थाह ही नहीं है। हिन्दुस्तान विकासशील देशों में एक है। किन्तु जो देश पूर्णरूपेण विकसित है, वहां धन मानों ऊपर से बरस रहा है। वहां एक दिन में न जाने क्या से क्या हो जाता है। इतना होने पर भी इसका परिणाम क्या आ रहा है ? अनुभव यही बताता है कि इसका परिणाम है–संघर्ष, लड़ाई और क्रांति।

आज सारा संसार एक प्रकार की क्रांति के कगार पर खड़ा है। किसलिए ? इसीलिए कि बुद्धि का उपयोग सीमा से अतिक्रांत होकर हो रहा है। प्रश्न होता है–उसकी सीमा क्या है ? सीमा यह होनी चाहिए कि बुद्धि शक्ति का उपयोग अपने सुख के लिए अवश्य हो, पर उससे दूसरों के सुख में कोई बाधा नहीं पहुंचनी चाहिए। जहां बुद्धि सीमा को पार कर आगे काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करती है। वहां लड़ाइयों और क्रांतियों के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

अपनी प्रगति के लिए जरूरी है– सीमा का बोध। जब सीमा-बोध की चेतना स्पष्ट हो जाती है तब प्रगति की बाधाएं समाप्त हो जाती हैं। यदि सीमा-बोध की चेतना नहीं जागती है और व्यक्ति अपनी शक्ति का उपयोग करता है तो उसके प्रति दूसरे के मन में प्रतिहिंसा की भावना जागती है। हिंसा और प्रतिहिंसा, क्रिया और प्रतिक्रिया–यह सब सीमा के अतिक्रमण के परिणाम हैं। प्रगति के लिए सीमा-बोध को मूल्य देना आवश्यक है।

मैंने प्रगति के कुछेक सूत्रों की विवेचना प्रस्तुत की है। यदि ये सारे सूत्र हमारी बुद्धि में समा जाते हैं तो प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और अठारह पापों के व्युत्सर्ग की चेतना भी जाग जाती है, सामायिक की सफल आराधना संभव बन जाती है।

जयाचार्य ने आराधना में पाप के व्युत्सर्ग का सुन्दर प्रकरण लिखा है। अतीत का शोधन हो, आदतें बदले और भविष्य के लिए ऐसी व्यवस्था हो, जिससे पाप का आगमन न हो।

आदतों को बदलने की प्रक्रिया

प्रेक्षा-ध्यान की प्रक्रिया आदतों को बदलने की प्रक्रिया है। प्रश्न है– आदतें कैसे बदलें ? प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि आदतें बदलें पर आदतें बदलती नहीं हैं। क्यों नहीं बदलती ? पूरी रोटी नहीं खाई, भूख नहीं मिटी। पूरा पानी नहीं पिया, प्यास मिटी नहीं। औषधि का पूरा कोर्स नहीं लिया। बीमरी मिटी नहीं। इसी प्रकार आदतों को बदलने का पूरा कोर्स है। यह मनोविज्ञान की भाषा है। अध्यात्म की भाषा में भी ऐसा ही कोर्स है।

विलियम जेम्स ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आदतों को बदलने का कोर्स प्रस्तुत किया है। उसमें तीन बातें मुख्य हैं–

१. बदलने की तीव्र इच्छा।

२. दृढ़ निश्चय।

३. निरन्तरता।

पहली बात है कि व्यक्ति के मन में तीव्र अभीप्सा जागे कि उसे अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदतों को बदलना है। जब तक यह इच्छा ही पैदा नहीं होती तब तक बदलने का प्रश्न ही नहीं होता। मान लें कि बदलने की इच्छा पैदा हो गई। पर उससे भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। आदमी रोज यह इच्छा करता जाए कि मुझे क्रोध नहीं करना है, पर क्रोध के उत्पन्न होने में कोई अन्तर नहीं आएगा। इच्छा के साथ दृढ़ निश्चय भी होना चाहिए। इच्छा को दृढ़ निश्चय में बदल देना चाहिए। निश्चय ऐसा हो कि मुझे बदलना ही है। बदले बिना चैन नहीं लूंगा। निश्चय दृढ़ होगा तो रूपांतरण प्रारम्भ हो जाएगा। दृढ़ निश्चय के साथ-साथ निरन्तरता भी होनी चाहिए। एक दिन निश्चय किया, फिर दस दिन तक उसकी स्मृति ही नहीं रही तो कुछ भी रूपांतरण घटित नहीं होगा। निरंतरता से आदत अपने आप बदलने लग जाएगी।

रूपान्तरण के उपाय

रूपान्तरण के तीन मुख्य उपाय हैं--

१. वर्तमान में पाप का व्युत्सर्ग करें– पाप न करने का दृढ़ संकल्प करें–**'इयाणिं णो जमहं पुव्वकासी पमाएणं'**–अब मैं वैसा काम नहीं करूंगा जो मैंने पहले प्रमादवश कर लिया था।

ये तीनों उपाय जब एक साथ काम में लिए जाते है तब रूपांतरण घटित होने लग जाता है, प्रगति होने लग जाती है।

आराधना में निरूपित मानसिक चिकित्सा-पद्धति की भाषा पुराना है। आज की मनोचिकित्सा की पद्धति की भाषा नई है। यदि उस पुरानी भाषा को नई भाषा में बदला जा सके तो इस सामायिक की आराधना को मानसिक चिकित्सा का एक महाग्रन्थ कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक के तीन आयाम

हमारे जगत् का मूल एक है या अनेक ? एकता मौलिक है या अनेकता ? दृश्य जगत् बिम्ब है या प्रतिबिम्ब ? ये प्रश्न हजारों-हजारों वर्षों से चर्चित होते रहे हैं। इनमें से दो प्रतिप्रत्तियां मुख्य हैं–एक अद्वैत की और दूसरी द्वैत की। वेदान्त की प्रतिपत्ति यह है कि जगत् का मूल एक है। वह चेतन, सर्वज्ञ और सर्वेश्वर है। उसकी संज्ञा ब्रह्म है। एकता मौलिक है, अनेकता उसका विस्तार है। हमारा जगत् प्रतिबिम्ब है। बिम्ब एक ब्रह्म ही है। एक सूर्य हजारों जलाशयों में प्रतिबिम्बित होकर हजार बन जाता है। प्रातःकाल सूर्य की रश्मियां दूर-दूर फैलती हैं, सांझ के समय वे सूर्य की ओर लौट आती हैं। यह जगत् ब्रह्मा की रश्मियों का फैलाव है। यह लौटकर उसी में विलीन हो जाता है।

सांख्य की प्रतिपत्ति यह है कि जगत् के मूल में दो तत्त्व हैं–प्रकृति और पुरुष (आत्मा)। प्रकृति अचेतन है और पुरुष चेतन। पुरुष अनेक हैं, इसलिए एकता मौलिक नहीं है। चेतन और अचेतन में बिम्ब और प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध नहीं।

महावीर की प्रतिपत्ति इन दोनों प्रतिपत्तियों से भिन्न है। उनका दर्शन है कि विश्व का कोई भी तत्त्व या विचार दूसरों से सर्वथा भिन्न नहीं है। इस अर्थ में उनकी प्रतिपत्ति दोनों से अभिन्न भी है। महावीर ने बताया कि अस्तित्व एक है। उसमें चेतन और अचेतन का विभाजन नहीं है। उसमें केवल होना ही है। वहां होने के साथ कोई विशेषण नहीं जुड़ता। जहां केवल होना है, कोरा अस्तित्व है, वहां होने के साथ कोई विशेषण नहीं जुड़ता। जहां केवल होना है, कोरा अस्तित्व है, वहां पूर्ण अद्वैत है। अस्तित्व की एकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बिन्दु पर महावीर ने अद्वैत का प्रतिपादन किया। विश्व में केवल अस्तित्व की क्रिया होती तो यह जगत् होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। पर उसमें अनेक क्रियाएं और पृष्ठभूमि में रहे हुए अनेक गुण हैं। एक तत्त्व में चैतन्यगुण और उसकी क्रिया मिलती है। दूसरे तत्त्व में वह गुण और उसकी क्रिया नहीं मिलती। गुण और क्रिया की विलक्षणता के बिन्दु पर महावीर ने द्वैत का प्रतिपादन किया। महावीर न द्वैतवादी हैं और न अद्वैतवादी। वे द्वैतवादी भी हैं और अद्वैतवादी भी हैं। उनके दर्शन में विश्व का मूल एक भी है और अनेक भी हैं। अस्तित्व जैसे व्यापक गुण की दृष्टि से देखें तो एकता मौलिक है। चैतन्य जैसे विलक्षण गुण की दृष्टि से देखें तो अनेकता मौलिक है। निष्कर्ष की भाषा में कहें तो एकता भी मौलिक है और अनेकता भी मौलिक है।

महावीर के दर्शन में अनन्त परमाणु हैं और अनन्त आत्माएं। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक आत्मा बिम्ब है। हर बिम्ब का अपना-अपना प्रतिबिम्ब है। गुण का स्थायीभाव बिम्ब और उसकी गतिशीलता प्रतिबिम्ब है।

महावीर ने इस दर्शन की भूमि में साधना का बीज बोया। अचेतन के सामने साधना का कोई प्रश्न नहीं है। उसका होना और गतिशील होना—दोनों प्राकृतिक नियमों से होते हैं। ज्ञानपूर्वक कुछ नहीं होता। चेतन का होना प्राकृतिक नियम से जुड़ा हुआ है किन्तु उसकी गतिशीलता प्राकृतिक नियम से संचालित नहीं होती। वह ज्ञानपूर्वक बदलता है—जो होना चाहता है, उस दिशा में प्रयाण करता हैं। यही है उसकी साधना। मनुष्य का ज्ञान विकसित होता है इसलिए वह विकास के चरम-बिन्दु पर पहुंचना चाहता है। उसके सामने चेतना की दो भूमिकाएं हैं—एक द्वन्द्व की और दूसरी द्वन्द्वातीत की। जीवन और मृत्यु, सुख और दुःख, मान और अपमान, हर्ष और विषाद जैसे असंख्य द्वन्द्व हैं। ये मन पर आघात करते रहते हैं। उसमें मन का संतुलन बिगड़ जाता है। वह विषम हो जाता है।

द्वन्द्व के आघात से बचने के लिए महावीर ने समता की साधना प्रस्तुत की। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म का नाम है—समता धर्म, सामायिक धर्म। इसके दो अर्थ हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. प्राणी-प्राणी के बीच में समता की खोज और सहानुभूति

२. द्वन्द्वों के दोनों तटों के बीच में मानसिक समता के पुल का निर्माण।

समता का विकास मैत्री, अभय और सहिष्णुता—इन तीन आयामों में होता है। जिस व्यक्ति में प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जागृत नहीं होती, वह अभय नहीं हो सकता और भयभीत मनुष्य में मैत्री का विकास नहीं हो सकता। जिसमें अनुकूल परिस्थिति को सहन करने की क्षमता जागृत नहीं होती, वह गर्व से उन्मत्त होकर दूसरों में भय और अमैत्री का संचार करता है। तीनों आयामों में विकास करने पर ही समता स्थायी होती है।

समता एक आयाम में विकसित नहीं होती। यह होता है कि हम किसी व्यक्ति को मैत्री के आयाम में अधिक गतिशील देखते हैं, किसी को अभय के आयाम में और किसी को सहिष्णुता के आयाम में। इनमें से एक के होने पर शेष दो का होना अनिवार्य है। समता के होने पर इन तीनों का होना अनिवार्य है। इन तीनों का होना ही वास्तव में समता का होना है।

मैत्री का आयाम

कालसौकरिक राजगृह का सबसे बड़ा कसाई था। उसके कसाईखाने में प्रतिदिन सैकड़ों भैंसे मारे जाते थे। एक दिन सम्राट् श्रेणिक ने कहा, कालसौकरिक! तुम भैंसों को मारना छोड़ दो। मैं तुम्हें प्रचुर धन दूंगा।'

कालसौकरिक को सम्राट् का प्रस्ताव पसन्द नहीं आया। भैंसों को मारना अब उसका धन्धा ही नहीं रहा, वह एक संस्कार बन गया। उन्हें मारे बिना कालसौकरिक को दिन सूना-सूना-सा लगता। उसने सम्राट् के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। सम्राट् ने इसे अपना अनादर मान कालसौकरिक को अन्धकूप में डलवा दिया। एक दिन-रात वहीं रखा।

श्रेणिक ने भगवान् महावीर से निवेदन किया—'भंते! मैंने कालसौकरिक से भैंसे मारने छुड़वा दिए हैं।'

'श्रेणिक! यह सम्भव नहीं है।'

'भंते! वह अन्धकूप में पड़ा है। वह भैंसों को कहां से मारेगा?'

'उसका हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है, फिर वह अपने प्रगाढ संस्कार को दंड-बल से कैसे छोड़ सकेगा?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तो क्या भगवान् यह कहते हैं कि उसने अन्धकूप में भी भैंसों को मारा है ?'

'हां, मेरा आशय यही है ।'

'भंते ! यह कैसे सम्भव है ।'

'क्या उस अन्धकूप में गीली मिट्टी नहीं है ?'

'वह है, भंते !'

'उस मिट्टी का भैंसा नहीं बनाया जा सकता ?'

'भंते ! बनाया जा सकता है ।'

'इसलिए मैं कहता हूं कि कालसौकरिक दिन-भर भैंसों को मारता रहा है ।'

सम्राट इस सत्य को समझ गया कि दण्ड-बल से हिंसा नहीं छुड़ाई जा सकती । वह हृदय-परिवर्तन से ही छूटती है । सम्राट् ने अन्धकूप के पास जाकर मरे हुए भैंसों को देखा और देखा कि कालसौकरिक के क्रूर हाथ अब भी उन्हें मारने में लगे हुए हैं । सम्राट् ने उसे मुक्त कर दिया ।

कुछ वर्षों बाद कालसौकरिक मर गया । यह दुनिया बहुत विचित्र है । इसमें कोई भी प्राणी अमर नहीं होता । एक दिन मारने वाला भी मर जाता है । लोगों ने सुना कि कालसौकरिक मर गया । परिवार के लोग आए और उसका दाह-संस्कार कर दिया ।

सुलस कालसौकरिक का पुत्र था । परिवार के लोगों ने उससे पिता का पद संभालने का अनुरोध किया । सुलस ने उसे ठुकरा दिया । 'मैं कसाई का धन्धा नहीं कर सकता'—उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी भावना प्रकट कर दी ।

परिवार के लोग बड़े असमंजस में पड़ गए । सारा काम ठप्प हो गया । उन्होंने फिर अनुरोध किया । सुलस ने विनम्र शब्दों में कहा—'मुझे जैसे मेरे प्राण प्रिय हैं, वैसे ही दूसरों को अपने प्राण प्रिय हैं । फिर मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरों के प्राण कैसे लूट सकता हूं ?'

स्वजन-वर्ग ने प्राणी-हिंसा में होने वाले पाप के विभाजन का आश्वासन दिया । उन्होंने एक भैंसे को मारकर कार्य प्रारम्भ करने का अनुरोध किया । सुलस ने अपने पिता के कुठार को हाथ में उठाया । स्वजन-वर्ग हर्ष से झूम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उठा। सुलस ने सामने खड़े भैंसे को करुणापूर्ण दृष्टि से देखा और कुठार अपनी जंघा पर चलाया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। जंघा से रक्त की धार बह चली। थोड़ी देर बाद वह सावचेत हुआ। वह करुणापूर्ण स्वर में बोला–'बंधुओ ! यह घाव मुझे पीड़ित कर रहा है। कृपया आप मेरी पीड़ा को बंटाएं, जिससे मेरी पीड़ा कम हो। स्वजन-वर्ग ने खिन्न मन से कहा–'यह कैसे हो सकता है ? पीड़ा को कैसे बांटा जा सकता है ?' सुलस बोल उठा–'आप लोग मेरी पीड़ा का विभाग भी नहीं ले सकते तब मेरे पाप का विभाग कैसे ले सकेंगे ? मैं इस हिंसा को नहीं चला सकता, भले फिर यह पैतृकी हो। क्या यह आवश्यक है कि पिता अन्धा हो तो पुत्र भी अन्धा होना चाहिए।'

अभय का आयाम

अर्जुन मालाकर आज बडी तत्परता से अपनी पुष्पवाटिका में पुष्प चुन रहा है। बंधुमती छाया की भांति उसके पीछे चल रही है। उनका मन बहुत उत्फुल्ल है। राजगृह के कण-कण में उत्सव अठखेलियां कर रहा है। उसका हर नागरिक सुरभि-पुष्पों के लिए लालायित हो रहा है। 'आज पुष्पों का विक्रय प्रचुर मात्रा में होगा'–इस कल्पना ने अर्जुन के हाथों और पैरों में होड़ उत्पन्न कर दी। थोड़े समय में ही चारों करंडक पुष्पों से भर गए। मालाकार-दंपति पुलकित हो उठा।

अर्जुन पुष्पवाटिका में पुष्प चुनकर यक्ष की पूजा करने जाया करता था। मुद्गरपाणि उस प्रदेश का सुप्रसिद्ध यक्ष है। उसका आयतन पुष्पवाटिका से सटा हुआ है। अर्जुन यक्ष का भक्त है। यह भक्ति उसे वंश-परम्परा से प्राप्त है।

राजगृह में ललित नाम की एक गोष्ठी थी। उसके सदस्य गोष्ठिक कहलाते थे। उस दिन छह गोष्ठिक पुरुष यक्षायतन में क्रीड़ा कर रहे थे। अर्जुन अपनी नित्य-चर्या के अनुसार यक्ष को पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ। वह नहीं जानता था कि आज नियति ने उसके लिए पहले से ही कोई चक्रव्यूह रच रखा है।

गोष्ठिक पुरुषों ने अर्जुन के पीछे बंधुमती को आते देखा। उनकी काम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासना जागृत हो गई। वे यक्षायतन के प्रकोष्ठ में छिप गए। मालाकार पुष्पांजलि-अर्पण के लिए नीचे झुका। उस समय छहों पुरुष बाहर निकले और मालाकर को कस-कर बांध दिया। अब बंधुमती अरक्षित थी। मालाकार का शरीर बंधा हुआ था, किन्तु उसकी आंखें मुक्त थीं और उससे भी अधिक मुक्त था उसका मन। गोष्ठिकों द्वारा बंधुमती के साथ किया गया अतिक्रमण वह सहन नहीं कर सका। वह भावुकता के चरम बिन्दु पर पहुंचकर बोला–'मुद्गरपाणि ! मैं तुम्हारी इस काष्ठ प्रतिमा से प्रवंचित हुआ हूं। मैंने व्यर्थ ही शत-शत कार्षापणों के पुष्प इसके सामने चढ़ाए हैं। यदि तुम यहां होते तो क्या तुम्हारे सामने यह दुर्घटना घटित होती ?' वह भावना के आवेश में इतना बहा कि स्मृति खो बैठा। अकस्मात् एक तेज आवाज हुई। मालाकार के बंधन टूट गए। उसका आकार विकराल हो गया। उसने मुद्गर उठाया और सातों को मौत के घाट उतार दिया। उसका आवेश अब भी शान्त नहीं हुआ।

अर्जुन की पुष्पवाटिका राजगृह के राजपथ के सन्निकट थी। उधर लोगों का आवागमन चलता था। पर यक्षायतन में घटित घटना का किसी को पता नहीं चला। मालाकर ने दूसरे दिन फिर सात पथिकों (छह पुरुष और एक स्त्री) की हत्या कर डाली। इस घटना से नगर में आतंक फैल गया। नगर के आरक्षिकों ने अनेक प्रयत्न किए पर उस पर नियंत्रण नहीं पा सके।

सात मनुष्यों की हत्या करना अर्जुन का दैनिक कार्यक्रम बन गया। महाराज श्रेणिक के आदेश से राजगृह में यह घोषणा हो गई–'मुद्गरपाणि-यक्षायतन की दिशा में कोई व्यक्ति न जाए।' इस घोषणा के साथ राजपथ अवरुद्ध हो गया। फिर भी कुछ भूले-भटके लोग उधर चले जाते और मालाकर के शिकार बन जाते। सात मनुष्यों की हत्या का यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा। छह गोष्ठिकों के पाप का प्रायश्चित न जाने कितने निरपराध लोगों को करना पड़ा।

जिस राजगृह को भगवान् अभय का पाठ पढ़ा रहे थे, जहां भगवान् की अहिंसा सुरसरिता की भांति सतत प्रवाहित हो रही थी, जिसका कण-कण श्रद्धा और संयम की सुधा से अभिषिक्त हो रहा था, वह नगर आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भय से संत्रस्त, हिंसा से आतंकित और संदेह से उत्पीड़ित हो रहा था। यह महावीर के लिए चुनौती थी। यह चुनौती थी उनकी अहिंसा को, उनकी संकल्प-शक्ति को और उनके धर्म की समग्र धारणा को। भगवान् ने इस चुनौती को झेला। वे राजगृह पहुंचे और गुणशीलक चैत्य में ठहर गए। राजगृह के नागरिकों को भगवान् के आगमन का पता लग गया। पर कौन जाए ? कैसे जाए ? भगवान् महावीर और राजगृह के बीच में दिख रहा था सबको अर्जुन और उसका प्राणघाती मुद्गर। जनता के मन में उत्साह जागा पर समुद्र के ज्वार की भांति पुनः समाहित हो गया।

सुदर्शन का उत्साह शान्त नहीं हुआ। उसने भगवान् की सन्निधि में जाने का निश्चय कर लिया। उसकी विदेह-साधना बहुत प्रबल थी। वह मौत के भय से अतीत हो चुका था। उसने अपने माता-पिता से कहा–

'अम्ब-तात ! भगवान् महावीर गुणशीलक चैत्य में पधार गए हैं।

'वत्स ! हमने भी सुना है, जो तुम कह रहे हो।'

'अब हमारा क्या धर्म है ?'

'हमारा धर्म है भगवान् की सन्निधि में उपस्थित होना। किन्तु...।'

'अंब-तात ! भय के साम्राज्य में किन्तु का अन्त कभी नहीं होगा।'

'क्या जीवन का कोई मूल्य नहीं है ?'

'धर्म का मूल्य उससे बहुत अधिक है। अल्पमूल्य का बलिदान कर यदि मैं बहुमूल्य को बचा सकूं तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।'

'वत्स ! अभी मगध सम्राट् श्रेणिक भी भगवान् की सन्निधि में नहीं पहुंचे हैं, तब हमें क्यों इतनी चिन्ता मोल लेनी चाहिए ?'

'यह चिन्ता का प्रश्न नहीं है, यह धर्म का प्रश्न है। यह सत्ता का प्रश्न नहीं है, यह श्रद्धा का प्रश्न है। क्या श्रद्धा के क्षेत्र में मेरा स्थान सम्राट् से अग्रिम पंक्ति में नहीं हो सकता ?'

'क्यों नहीं हो सकता ?'

'फिर आप सम्राट् की ओट मे मुझे क्यों रोकना चाहते हैं ?'

'अच्छा वत्स ! तुम भगवान् की शरण में जाओ। तुम्हारा कल्याण हो। निर्विघ्न हो तुम्हारा पथ।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदर्शन माता-पिता का आशीर्वाद ले घर से चला। मित्रों ने एक बार फिर रोका और टोका उन सबने, जिन्हें इस बात का पता चला। पर सत्याग्रही के पैर कब रुक सके हैं ? उसके पैर जिस दिशा में उठ जाते हैं, वे मंजिल तक पहुंचे बिना रुक नहीं पाते। सुदर्शन अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ा। वह अकेला था। उके साथ था केवल श्रद्धा का बल। वह प्रतोली-द्वार तक पहुंचा। आरक्षिक ने उसे रोककर पूछा–'कहां जाना चाहते हो ?'

'गुणशील चैत्य में।'

'किसलिए ?'

'भगवान् महावीर की उपासना के लिए।

'बहुत अच्छा। किन्तु श्रेष्ठिपुत्र ! इस राजपथ से जाना क्या मौत को निमंत्रण देना नहीं है ?'

'हो सकता है, किन्तु मैं मौत को निमंत्रित करने नहीं जा रहा हूं।'

'यह राजपथ राजाज्ञा द्वारा अवरुद्ध है, आपको पता होगा ?'

'हां, मुझे मालूम है पर मैं जिस उद्देश्य से जा रहा हूं, वह अबाधित है। जिसका सबको भय है, उससे मैं भयभीत नहीं हूं, फिर यह राजपथ मेरे लिये क्यों अवरुद्ध होगा ?'

आरक्षिक इसके उत्तर की खोज में लग गया। सुदर्शन के पैर आगे बढ गए। सुनसान राजपथ ने सुदर्शन के प्रत्येक पद-चाप को ध्यान से सुना। उसमें न कोई धड़कन थी,न आवेग और न विचलन। सुदर्शन राजपथ के कण-कण को ध्यान से देखता जा रहा था। पर उसे सर्वत्र दिखाई दे रहा था महावीर का प्रतिबिंब। वह सुन रहा था पग-पग पर महावीर का सिंहनाद।

राजपथ के आसपास अर्जुन घूम रहा था। लग रहा था जैसे काल की छाया घूम रही हो। उसने सुदर्शन को आते देखा। उसे लगा जैसे कोई बलि का बकरा आ रहा है। वह सुदर्शन की ओर दौड़ा। भय अभय को परास्त करने के लिए विह्वल हो उठा। श्रद्धा और आवेश के समर की रणभेरी बज चुकी। सुदर्शन ने अपनी तैयारी पूर्ण कर ली। उसने समता की दीक्षा स्वीकार की। वह संकल्प का कवच पहन कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा हो गया। उसकी ध्यान-मुद्रा उपसर्ग का अन्त होने से पहले भग्न नहीं होगी, यह उसकी आकृति बता रही थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्जुन निकट आते ही गरज उठा–'तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं ? कोई मित्र और परामर्शक नहीं हैं ? तुम्हें नहीं मालूम कि यहां आने पर तुम मृत्यु के अतिथि बन जाओगे ? तुम बोल नहीं रहे हो ! बड़े लापरवाह दीख रहे हो ! अब तैयार हो जाओ तुम इस मुद्गरपाणि का प्रसाद पाने के लिए ।'

सुदर्शन अपने ध्यान में लीन था । वह न बोला और न प्रकंपित हुआ । अर्जुन का आवेश और अधिक बढ़ गया । उसने मुद्गर को आकाश में उछालने का प्रयत्न किया । पर हाथ उसकी इच्छा को स्वीकार नहीं कर रहे थे । वे जहां थे, वहीं स्तम्भित हो गए । अर्जुन ने अपनी सारी शक्ति लगा दी । पर उसका शरीर उसकी हर इच्छा को अस्वीकार करने लगा । उसका मनोबल टूट गया । आवेश शान्त हो गया ।

अब अर्जुन केवल अर्जुन था । उसका शरीर आवेश में शिथिल हो चुका था । वह अपने को संभाल नहीं सका । वह सुदर्शन के पैरों में लुढ़क गया ।

सुदर्शन ने देखा उपसर्ग शान्त हो चुका है । भय की काली घटा बिना बरसे ही फट गयी है । उसने अर्धोन्मीलित आंखें खोलीं । कायोत्सर्ग सम्पन्न किया । उसने महावीर की स्मृति के साथ अर्जुन के सिर पर हाथ रखा । उसकी मूर्च्छा टूट गई । उसके चिदाकाश में जागृति की पहली किरण प्रकट हुई । उसने जागृति के क्षण में फिर उस प्रश्न को दोहराया–

'तुम कौन हो ?'

'मैं भगवान् महावीर का उपासक हूं ।'

'कहां जा रहे हो ?'

'भगवान् महावीर की उपासने करने जा रहा हूं ।'

'क्या मैं भी जा सकता हूं ?'

'किसी के लिए प्रवेश निषिद्ध नहीं है ।'

अर्जुन सुदर्शन के साथ भगवान् के पास पहुंचा । आरक्षिकों ने श्रेणिक को सूचना दी कि पाप शान्त हो गया है । राजपथ निर्विघ्न है । निरंकुश हाथी पर अकुंश का नियंत्रण है । अर्जुन सुदर्शन के साथ भगवान् महावीर के पास चला गया है । राजकीय घोषणा के साथ राजपथ का आवागमन खुल गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् के कण-कण में अहिंसा का प्रवाह था। मैत्री और प्रेम की अजस्र धाराएं बह रही थीं। उसमें स्नात व्यक्ति की क्रूरता धुल जाती थी। अर्जुन का मन मृदुता का क्षेत्र बन गया।

मनुष्य के अंतःकरण में कृष्ण और शुक्ल–दोनों पक्ष होते हैं। जिनकी चेतना तामसिक होती है, वे प्रकाश पर तमस् का ढक्कन चढ़ा देते हैं। जिनकी चेतना आलोकित होती है, वे प्रकाश को उभार तमस् को विलीन कर देते हैं। भगवान् ने अर्जुन के अन्तःकरण को आलोक से भर दिया। उसके मन में समता की दीपशिखा प्रज्वलित हो गई। वह मुनि बन गया।

कल का हत्यारा आज का मुनि–यह नाटकीय परिवर्तन जनता के गले कैसे उतर सकता है ? हर आदमी उस सत्य को नहीं जानता कि मनुष्य के जीवन में बड़े परिवर्तन नाटकीय ढंग से होते हैं। असाधारण घटना साधारण ढंग से नहीं हो सकती। साधारण आदमी असाधारण घटना को एक क्षण में पकड़ भी नहीं पाता। अर्जुन से आतंकित जनता उसके मुनित्व को स्वीकार नहीं कर सकी।

अर्जुन ने भगवान् के पास समता का मंत्र पढ़ा। उसकी समता प्रखर हो गई। मान-अपमान, लाभ-अलाभ, जीवन-मृत्यु और सुख-दुःख में तटस्थ रहना उसे प्राप्त हो गया।

कुछ दिनों बाद मुनि अर्जुन भिक्षा के लिए राजगृह में गया। घर-घर से आवाजें आने लगीं–इसने मेरे पिता को मारा है, भाई को मारा है, पुत्र को मारा है, माता को मारा है, पत्नी को मारा है, मित्र को मारा है। कहीं गालियां, कहीं व्यंग, कहीं तर्जना और कहीं प्रताड़ना। अर्जुन देख रहा है–यह कृत की प्रतिक्रिया है, अतीत के अनाचरण का प्रायश्चित्त है। उसे यदि रोटी मिलती है तो पानी नहीं मिलता और यदि पानी मिलता है तो रोटी नहीं मिलती। पर उसका मन न रोटी में उलझता है और न पानी में। उसका मन समता में उलझकर सदा के लिए सुलझ गया। उसके समत्व की निष्ठा ने जनता का आक्रोश सद्भावना में बदल दिया। अहिंसा ने हिंसा का विष धो डाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहिष्णुता का आयाम

मेतार्य जन्मना चाण्डाल थे। वे भगवान् महावीर के संघ में दीक्षित हुए। उनका मुनि-जीवन ज्ञान और समता की साधना से प्रदीप्त हो उठा। उनके अन्तर की ज्योति जगमगा उठी। वे संघ की सीमा से मुक्त हो गए। अब वे अकेले रहकर साधना करने लगे। एक बार वे राजगृह में आए। स्वर्णकार के घर भिक्षा लेने पहुंचे। स्वर्णकार उन्हें देख हर्ष-विभोर हो उठा। वह वन्दना कर बोला--'श्रमण ! आप यहीं ठहरें। मैं दो क्षण में यह देखकर आ रहा हूं कि रसोई बनी या नहीं ?' स्वर्णकार भीतर घर में गया। मुनि वहीं खड़े रहे। स्वर्णकार की दुकान में क्रौंच पक्षी का युगल बैठा था। स्वर्णकार के जाते ही वह आगे बढ़ा और दुकान में पड़े स्वर्ण-यवों को निगल गया।

स्वर्णकार मुनि को घर में ले जाने आया। उसने देखा, स्वर्ण-यव लुप्त हैं। वह स्तब्ध रह गया। उसके मन में आवेश उतर आया। उसने स्वर्ण-यवों के विषय में मुनि से पूछा। मुनि मौन रहे। स्वर्णकार का आवेश बढ़ गया। वह बोला--'श्रमण ! मैं अभी आपके सामने स्वर्ण-यव यहां छोड़कर गया। कुछ ही क्षणों में मैं लौट आया। इस बीच कोई दूसरा व्यक्ति यहां आया नहीं। मेरे स्वर्ण-यवों के लुप्त होने का उत्तरदायी आपके सिवाय दूसरा कौन हो सकता है ?' मुनि अब भी मौन रहे।

स्वर्णकार मुनि से उत्तर चाहता था। मुनि उत्तर दे नहीं रहे थे। उनका मौन स्वर्णकार की आकांक्षा पर चोट करने लगा। उसने आहत स्वर में कहा--'श्रमण ! वे स्वर्ण-यव मेरे नहीं हैं। वे सम्राट् श्रेणिक के हैं। मैं उनके अन्तःपुर के आभूषण तैयार कर रहा हूं। यदि वे स्वर्ण-यव नहीं मिलेंगे तो मेरी क्या दशा होगी, क्या आप नहीं जानते ? आप श्रमण हैं। आपने कितना वैभव छोड़ा है ! आप मेरे सम्राट् के दामाद रहे हैं। अब आप मेरे आराध्य भगवान् महावीर के संघ में दीक्षित हैं। आप अपने त्याग को देख, सम्राट् की ओर देखें, भगवान् की ओर देखें और मेरी ओर देखें। मन से लोभ को निवारें, मेरी वस्तु मुझे लौटा दें। मनुष्य से भूल हो सकती है। आप साधक हैं। अभी सिद्ध नहीं हैं। आप से भी भूल हो सकती है। अभी और कोई नहीं जानता। आप जानते हैं या मैं जानता हूं। तीसरा कोई नहीं जानता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप मेरी बात पर ध्यान दें। मेरी वस्तु मुझे लौटा दें। भूल के लिए प्रायश्चित्त करें।'

स्वर्णकार द्वारा इतना कहने पर भी मुनि का मौन भंग नहीं हुआ। स्वर्णकार ने सोचा, श्रमण का मन ललचा गया है। ये दंड के बिना नहीं मानेंगे। उसने रास्ता बन्द कर दिया। वह तत्काल गीला चर्मपट्ट लाया। मुनि का सिर उससे कसकर बांध दिया। वे भूमि पर लुढ़क गए। सूर्य के ताप से चर्मपट्ट और साथ-साथ मुनि का सिर सूखने लगा।

मुनि ने सोचा–'इसमें स्वर्णकार का क्या दोष है? वह बेचारा भय से आतंकित है। मैं भी मौन-भंग कर क्या करता? मेरे मौन-भंग का अर्थ होता–क्रौंच-युगल की हत्या। यह चक्रव्यूह किसी की बलि लिये बिना भग्न होने वाला नहीं है। दूसरों के प्राणों की बलि देने का मुझे क्या अधिकार है? मैं अपने प्राणों की बलि दे सकता हूं।'

वे अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत हो गए। उनका चित्त ध्यान के प्रकोष्ठ में पहुंच गया। उनका मन सरिता में नौका की भांति तैरने लगा। कष्ट शरीर को होता है। उसकी अनुभूति मन को होती है। दोनों घुले-मिले रहते हैं, तब कष्ट का संवेदन तीव्र होता है। जब मन शरीर की सरिता के ऊपर तैरने लगता है तब उसका संवेदन क्षीण हो जाता है। यह है सहिष्णुता–समता के विवेक से पल्लवित, पुष्पित और फलित।

द्वन्द्व का होना जागतिक नियम है। इसे कोई बदल नहीं सकता। द्वन्द्व की अनुभूति को बदला जा सकता है। यह परिवर्तन द्वन्द्वातीत चेतना की अनुभूति होने पर ही होता है। द्वन्द्व की अनुभूति का मूल राग और द्वेष का द्वन्द्व है। इस द्वन्द्व का अन्त होने पर द्वन्द्वातीत चेतना जागृत होती है। समता का आदि-बिन्दु द्वन्द्वातीत चेतना की जागृति का आदि-बिन्दु है। समता का चरम-बिन्दु द्वन्द्वातीत चेतना की पूर्ण जागृति है। इस अवस्था में समता और वीतरागता एक हो जाती है। साधन साध्य में विलीन हो जाता है। वस्तु-जगत् में द्वैत रहता है किन्तु चेतना के तल पर द्वन्द्व के प्रतिबिम्ब समाप्त हो जाते हैं। विषमता-विहीन समता अपने स्वरूप को खो देती है। न विषमता रहती है और न समता, कोरी चेतना शेष रह जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक और इन्द्रिय संवर

मैंने अपने मित्र से कहा–तुम तटस्थ नहीं हो। उसे बहुत बुरा लगा। किसी आदमी को कहा जाए कि तुम तटस्थ नहीं हो, पक्षपाती हो तो उसे बहुत बुरा लगता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको तटस्थ प्रमाणित करना चाहता है। कोई नहीं चाहता कि लोग उसे पक्षपाती समझे। यह लांछन उसे स्वीकार्य नहीं है। पक्षपात करने वाला भी पक्षपाती कहलाना नहीं चाहता। वह इसे सहन नहीं कर सकता। मित्र ने मुझसे पूछा–'यह कैसे कहा कि मैं तटस्थ नहीं हूं। मैं हर बात में तटस्थता बरतता हूं। किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। फिर मुझ पर यह आरोप क्यों ?' मित्र का कहना भी उचित था। प्रत्येक व्यक्ति इसी आधार पर अपना औचित्य स्थापित करता है। मैंने कहा– बहुत बार ऐसा होता है कि प्रकाश के नीचे अंधकार छिपा रह जाता है। 'दीपक तले अंधेरा'–यह प्रसिद्ध कहावत है।

अपनी पहचान

हम स्वयं खोजें, क्या हमारे प्रकाश के नीचे कहीं अन्धकार तो नहीं छिपा है। दूसरों को जानना, दूसरों को पहचानना बहुत सरल है। अपने आपको जानना, अपने आपको पहचानना सबसे कठिन कार्य है। दूसरों के विषय में हमारी धारणाएं बहुत निश्चित होती हैं। स्वयं के बारे में अपनी धारणा एकपक्षीय होती है। हर बात में यह तर्क होता है, मैं अच्छा हूं, मैं कोई भूल नहीं करता, मैं तुम्हारे जैसा नहीं हूं, जो दूसरों की बात में आ जाऊं या ऐसा कहूं, यह तर्क सबके सामने प्रखर रूप से रहता है। उसे अपनी दुर्बलता को स्वीकार करना मान्य नहीं होता। हजारों में ऐसा व्यक्ति विरल ही मिलेगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो इस सचाई को स्वीकार करे कि मेरे में कोई कमजोरी है, दुर्बलता है। कभी वह शाब्दिक रूप से स्वीकार कर भी लेता है तो अन्तरात्मा साक्षी नहीं देती कि वह वैसा है। अन्तर में वही तर्क चलता है, मेरा कोई दोष नहीं, वातावरण के कारण मुझे वैसा करना पड़ा। विवश होकर वैसा करना पड़ा। 'मैं कमजोर हूं' यह स्वीकार करने के लिए अन्तर आत्मा कभी तैयार नहीं होती।

तटस्थ कहां हो ?

इस स्थिति में मेरे मित्र का कहना अस्वाभाविक नहीं था कि वह तटस्थ नहीं है, यह मिथ्या आरोप है। व्यवहार के धरातल पर यह बात सही है। मैंने व्यवहार से हटकर अन्तर जगत् के दरवाजे को खोल कर चर्चा को आगे बढ़ाया। हर व्यक्ति इस संदर्भ में अपने आपको देखे, आत्मालोचन करे। तब मैंने कहा– मित्र ! तुम भोजन करते हो ? उसने कहा– जरूर करता हूं। भोजन के बिना तो जीवन कैसे चलेगा ? कौन प्राणधारी भोजन नहीं करता ? जीने की अनिवार्य शर्त है भोजन।

'भोजन करते हो तो स्वाद भी लेते हो ?'

'हां, स्वाद जरूर लेता हूं।'

'कुछ अच्छा भी लगता है, कुछ बुरा भी लगता है ?'

'हां, लगता है। मनुष्य हूं, पशु नहीं हूं। पशु भी चुनाव करता है। वह हर प्रकार की घास नहीं खाता। चुनाव करता है। मैं भी चुनाव करता हूं। सब कुछ नहीं खाता। स्वादिष्ट भोजन खाता हूं। स्वाद कैसे नहीं लूंगा। जीभ मिली है। स्वाद के ज्ञान-तंतु मिले हैं तो अच्छा भी लगेगा, बुरा भी लगेगा। अच्छे पदार्थ खाता हूं, बुरे को छोड देता हूं। जब अच्छा भोजन सामने आता है तब मन आनन्द से भर जाता है। बड़ी तृप्ति मिलती है। प्रियता का भाव जाग जाता है। जब अनिष्ट भोजन सामने आता है तब नाक-भौं सिकुड़ जाते हैं। बुरा लगता है, क्रोध आ जाता है।'

मैंने कहा--मित्र ! तुम तटस्थ कहां रहे ? तुम कहते हो--तटस्थ हूं। यह सही नहीं है। एक के साथ प्रियता का भाव रखते हो, दूसरे के साथ अप्रियता

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

का भाव रखते हो। एक को अच्छा मानते हो, एक को बुरा मानते हो। एक के आने पर रोम-रोम पुलकित हो जाता है और दूसरे के आने पर मन उदास हो जाता है, नाक-भौं सिकुड जाते हैं। इस स्थिति में तुम तटस्थ कैसे रहे? तटस्थ वह होता है, जो सामायिक अथवा समता में लीन रहता है।

तर्क का जाल

उसने कहा– 'क्या इन सबसे तटस्थता खंडित होती है? यदि इनसे भी तटस्थता खंडित होती है तो दुनिया में कोई भी तटस्थ हो नहीं सकता। क्या हम अपना विवेक खो दें? मनुष्य को इतनी बुद्धि मिली है, इतना विवेक मिला है कि वह अच्छे को अच्छा माने और बुरे को बुरा माने। अच्छे के प्रति प्रियता का भाव संपादित करे और बुरे के प्रति अप्रियता का भाव रखे। यह विवेक है, बुद्धि का परिणाम है। इसको छोड़ने का अर्थ है पशु बन जाना, पशु की श्रेणी से भी नीचे चले जाना इसलिए यह आरोप सही नहीं हो सकता कि ऐसा करके मैं अपनी तटस्थता को तोड़ रहा हूं।'

तर्क की अपनी सीमा होती है। तर्क के क्षेत्र में अस्वीकार करने की बात नहीं होती। दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसका तर्क के आधार पर समर्थन किया जा सके और तर्क के आधार पर खंडन न किया जा सके। हर बात का समर्थन तर्क के आधार पर किया जा सकता है। तर्क का काम ही है सचाई को न छूना, खंडन और मंडन को छूते रहना। जिसका जितना प्रबल तर्क, वह बात मंडित हो जाती है, जिसका जितना कमजोर तर्क वह बात खंडित हो जाती है। सचाई से उसका कोई संबंध नहीं। बस, तर्क की प्रबलता चाहिए। हम सब तर्क के जाल में उलझे हुए हैं। बुद्धि को बहुत बड़ा प्रभु मानकर चलने वाले इस बात को कैसे अस्वीकार करें।

अखंडित तटस्थता कब तक?

मेरा मित्र मेरी बात को स्वीकार नहीं कर सका। मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ कि मेरा मित्र मेरी बात नहीं मान रहा है। स्वाभाविक है, इस धरातल पर चलने वाला हर व्यक्ति इस सचाई को अस्वीकार करेगा। उसने कहा–'यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ के प्रति हमारी तटस्थता नहीं होती है तो क्या हम तटस्थ नहीं हो सकते ?'

मैंने कहा– वस्तु-जगत् के प्रति जो तटस्थ नहीं होता, वह चैतन्य जगत के प्रति कभी तटस्थ नहीं हो सकता। तटस्थता एक स्थान पर खंडित होती है तो वह हर स्थान पर खंडित होती चली जाती है। वह कभी अभंग और अखंड नहीं रह सकती। बांध में एक छेद हो जाता है तो वह छेद बढ़ता चला जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि पूरा बांध टूट जाता है। पानी सारा छितर जाता है।

सबसे पहले तटस्थता वस्तु-जगत् के प्रति होती है। जो व्यक्ति वस्तु जगत् के प्रति तटस्थ हो जाता है, वह प्राणी जगत् के प्रति तटस्थ हो जाता है। एक पिता के दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र के मन में शिकायत है कि पिता मेरे छोटे भाई के प्रति पक्षपात करते हैं। मेरे अधिकारों से मुझे वंचित कर रहे हैं। पिता अपने छोटे पुत्र को सारा धन दे देना चाहता है, बड़े पुत्र को अंगूठा दिखा देना चाहता है। ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिए होता है कि वस्तु-जगत् के प्रति उसके मन में तटस्थता नहीं है। उसके मन में चैतन्य का मूल्य नहीं है प्राणी का मूल्य नहीं है। उसके मन में मनुष्य का मूल्य नहीं है, पदार्थ का मूल्य है। वह सोचता है–जो मुझे प्रिय है, उसको पदार्थ ज्यादा मिले और जो अप्रिय है, उसको पदार्थ कम मिले। यह पदार्थ-जगत् की प्रियता और अप्रियता प्राणी-जगत् में भी प्रियता और अप्रिया के रूप में उतर आती है। सबसे पहले हमारी प्रियता और अप्रियता इन्द्रियों के साथ जुड़ती है। पांच इन्द्रियां हैं। हम प्रिय शब्द सुनना चाहते हैं, अप्रिय शब्द सुनना नहीं चाहते। प्रिय शब्दों के प्रति अनुराग होता है। अप्रिय शब्द सुनते ही एड़ी से चोटी तक आग लग जाती है। गुलाब का फूल, रात की रानी जब महकती है तब नाक को बहुत अच्छा लगता है। जहां प्रियता और अप्रियता का भाव है वहां तटस्थता कैसे हो सकती है ? जब शब्द के प्रति रूप, रस और स्पर्श के प्रति हमारी प्रियता और अप्रियता है तब तटस्थता संभव नहीं हो सकती। जो व्यक्ति तटस्थ होना चाहे, उसे सबसे पहले प्रियता और अप्रियता के भाव से छुटकारा पाना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तटस्थता का अवरोधक

एक लड़की जा रही थी। वह बहुत सुन्दर थी। एक युवक उसका पीछा करने लगा। लड़की ने उसे देख लिया। मुड़ कर वह बोली–'पीछे क्यों आ रहे हो ?' वह बोला–'मैं तुमसे प्रेम करता हूं।' लड़की बोली– 'बहुत अच्छा, किन्तु मेरी बहिन पीछे आ रही है। वह मेरे से अधिक सुन्दर है।' इतना कहते ही युवक वहीं रुक गया। वह आगे बढ़ गई। पीछे से एक लड़की आई। युवक ने देखा। वह कुरूप और भद्दी थी। युवक ने सोचा–धोखा हो गया। वहां से दौड़ा और पहली लड़की के पास आकर बोला– तुम्हारी बहिन तो बहुत कुरूप है। मैं तुम्हारे साथ ही रहना चाहता हूं। तुमसे मुझे बहुत प्रेम है !' वह बोली–'तुम झूठ बोलते हो। यदि मुझसे प्रेम होता तो तुम कभी पीछे नहीं रहते। तुम्हारा प्रेम मेरे से नहीं है, रूप और सौंदर्य से है। पीछे भद्दी और कुरूप लड़की मिली, इसलिए यहां भाग आए। यदि वह मेरे से अधिक रूपवती होती तो तुम कभी मेरे पास नहीं आते।'

यह प्रियता और अप्रियता का भाव व्यक्ति को कभी तटस्थ नहीं रहने देता।

मेरे मित्र को यह बात समझ में आ गई कि जब तक वस्तु-जगत् के प्रति, इन्द्रिय विषयों के प्रति प्रियता और अप्रियता का भाव समाप्त नहीं होता तब तक तटस्थता फलित नहीं होती। वह व्यक्ति मध्यस्थ नहीं हो सकता, सामायिक कभी अवतरित नहीं हो सकती।

तटस्थता कैसे ?

पूछा गया– तटस्थता अथवा सामायिक कैसे संभव हो सकती है ? मैंने कहा– तटस्थता इन्द्रिय-संवर द्वारा फलित होती है। जिस व्यक्ति ने इन्द्रिय-संवर साध लिया, वह तटस्थ हो जाता है। सामायिक को उपलब्ध हो जाता है। जब मन से प्रियता और अप्रियता का भाव समाप्त हो जाता है तब पदार्थ पदार्थ मात्र रह जाता है, प्राणी प्राणी मात्र रह जाता है। हम कह देते हैं, अच्छी वस्तु के साथ हमारी प्रियता जुड़ती है और बुरी वस्तु के साथ हमारी अप्रियता जुड़ती है। यह भ्रान्ति है। वस्तु रुचिकर लगती है प्रियता के कारण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरुचिकर लगती है अप्रियता के कारण। और प्रिय और अप्रियता के संस्कार धुल जाने पर वस्तु वस्तु रहती है, पदार्थ पदार्थ रहता है और यथार्थ यथार्थ रहता है। क्या यह संभव है कि प्रियता और अप्रियता का भाव समाप्त हो जाए ? बहुत संभव है। यदि हम प्रायोगिक जीवन जीएं तो ऐसा संभव है कि पदार्थ है, प्राणी है, किन्तु प्रियता और अप्रियता का संस्कार समाप्त। प्रश्न होता है—क्या आंखों और कानों को बंद रखें ? क्या इन्द्रियों के दरवाजों को दीर्घकाल तक बंद नहीं रखा जा सकता। जीवन की लंबी अवधि में, इस दीर्घकालीन यात्रा में यह कभी संभव नहीं है कि आदमी आंख बंद कर बैठ जाए, कानों के पडदे फाड़ दे। इन्द्रियों के द्वार खुले रहेंगे। पानी आएगा पर गंदगी नहीं आएगी। इन्द्रियों का काम है जानना, संवेदन करना, ज्ञान करना। लोगों ने भ्रान्तिवश यह मान लिया है कि इन्द्रियों का काम है राग-द्वेष करना, प्रियता और अप्रियता करना। यह काम इन्द्रियों का नहीं है। आंख का काम मूर्च्छित होना नहीं है, प्रियता-अप्रियता पैदा करना नहीं है। आंख तो ज्ञान की एक धारा है, चैतन्य की एक धारा है। इसमें कैसी प्रियता और कैसी अप्रियता ! ज्ञान और मूर्च्छा के योग को हमने एक मान लिया, यह बहुत बड़ी भ्रान्ति हो गई। ज्ञान की धारा भिन्न है, मूर्च्छा की धारा भिन्न है। राग और द्वेष की धारा ज्ञान-धारा के साथ जुड़ जाती है और हम दोनों को एक मान कर प्रियता और अप्रियता के भ्रम में फंस जाते हैं।

जब यह भ्रान्ति टूटती है, हमें अपने चैतन्य का अनुभव होता है तब इन्द्रिय-संवर सहज घटित हो सकता है। बेचारा हरिण दौड़ रहा है मृगमरीचिका के पीछे। सूरज की किरणें ताल में पड़ती हैं। मृग को लगता है कि वहां पानी लहलहा रहा है। वह पानी पीने दौड़ता है। निकट जाने पर वहां पानी नहीं मिलता। वहां से देखने पर आगे पानी दीखता है। वहां जाता है, पर पानी नहीं मिलता। वहां से देखने पर आगे पानी दीखता है। वहां जाता है, पर पानी नहीं मिलता।

बन्धन हैं राग और द्वेष

आदमी ने भी ऐसा ही भ्रम पाल रखा है। वह मानता है कि और अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाद मिले, अधिक प्रियता का भाव जागे, और अधिक तृप्ति मिले। इस तृप्ति की आकांक्षा से हर आदमी दौड़ रहा है उस हिरण की भांति, जो सूरज की रश्मियों की प्रवंचना में चक्कर लगाता है, पर पानी की एक बूंद भी नहीं मिलती। आदमी को कोई तृप्ति नहीं मिलती, और तृप्ति नहीं मिलती तो और चक्कर लगाने की स्थिति आ जाती है। हर आदमी दोनों बंधनों से बंधा हुआ है। एक है राग का बंधन, दूसरा है द्वेष का बंधन। इन दो बंधनों से कोई मुक्त नहीं है। सब इन दो बंधनों से बंधे हुए हैं। जयाचार्य ने प्रभु की स्तुति में कहा–'आपने राग और द्वेष–इन दोनों बंधनों को समझा है, जाना है और उन्हें तोड़ा है। जैसे ही ये बंधन टूटे, कैवल्य मिल गया। आप केवली हो गए।'

केवलज्ञान, अनावृत ज्ञान मिलने में कोई देरी नहीं होती, अतीन्द्रिय ज्ञान मिलने में विलंब नहीं होता, यदि यह प्रियता और अप्रियता का बंधन टूट जाए, जीवन में सामायिक घटित हो जाए। इन दोनों बंधनों ने एक दीवार खींच रखी है। हमारा चैतन्य जागता नहीं। चैतन्य तब जाग सकता है जब आकांक्षा समाप्त हो जाए। जैसे-जैसे आकांक्षा समाप्त होती है वैसे-वैसे चैतन्य का विकास होता चला जाता है।

संभव : असंभव

रैदास बहुत बड़े संत हुए हैं। वे जाति से चमार थे, किन्तु अपनी तपस्या से महायोगी बन गए। एक दिन एक महात्मा पहुंचे, प्रणाम कर बोले–'महायोगिन्! एक तुच्छ भेंट मैं आपको देना चाहता हूं। रैदास ने पूछा–क्या है भाई? यह पारसमणि है। लोहे को सोना बनाती है।'

'मेरे तो कोई काम का नहीं है भाई!'

'काम का नहीं है? यह कैसे? आप तो जूता गांठ रहे हैं रोटी के लिए। पारसमणि से आपकी समस्या समाहित हो जाएगी। फिर आपके पास धन ही धन रहेगा, आजीविका के लिए जूते गांठने की आवश्यकता नहीं होगी।'

पारसमणि का नाम सुनते ही आदमी के मुंह से लार टपकने लग जाती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है फिर वह आदमी कैसा अद्‌भुत होगा, जो पारसमणि को ठुकरा रहा है। बुद्धिहीन आदमी ही ऐसा कर सकता है।

महात्मा ने बहुत आग्रह किया। अति आग्रह देख कर रैदास ने कहा—यह रहा छप्पर, इसमें कहीं इस पारसमणि को खोंस दो, टांग दो। महात्मा ने वैसा ही किया।

दो वर्ष बीत गए। वही महात्मा पुनः रैदास के घर आया। उसने देखा, संत रैदास चमार का काम कर रहे हैं, जूते गांठ रहे हैं। उसके मन में यह कल्पना थी कि रैदास पारसमणि के योग से धनपति बन गए होंगे। अब उनके आलीशान मकान होगा। यह होगा, वह होगा। सब कुछ होगा। पर देखा रैदास का वही काम और वही धाम। न घर और न पैसा।

महात्मा का मन उद्‌वेलित हो उठा। उसने सचाई को समझने का प्रयत्न किया, पर समझ नहीं पाया।

महात्मा बोला— संतजी! मैंने एक भेंट दी थी, वह कहां है?

रैदास ने कहा— जहां रखी है, वहीं पड़ी है। मैंने उसको छुआ तक नहीं।

महात्मा असमंजस में पड़ गए। देखा, पारसमणि वहीं पड़ी है, जहां दो वर्ष पूर्व उसे टांगा था। रैदास ने उसका उपयोग ही नहीं किया। महात्मा ने सोचा— यह कैसे संभव हो सकता है कि पारसमणि पास में हो और व्यक्ति उसका उपयोग न करे? समाधान की भाषा में उत्तर मिला— जो व्यक्ति प्रियता और अप्रियता की दुनिया में जीता है, उसके लिए ऐसा करना असंभव है, किन्तु जो व्यक्ति इस बंधन से दूर है, जिसका यह बंधन टूट गया, उसके लिए यह संभव है। वह पारसमणि की ओर देखे, उसे अतिरिक्त मूल्य दे, यह कभी संभव नहीं है।

हमारी दुनिया दो असंभवों की दुनिया है। एक बात को छोड़ कर एक बात असंभव बनती है, दूसरी बात को छोड़ कर दूसरी बात असंभव बनती है। हम दो असंभवों के बीच अपनी यात्रा कर रहे हैं। ध्यान की यात्रा एक असंभव छोर की यात्रा है। भोग की यात्रा एक असंभव छोर की यात्रा है। प्रेक्षा ध्यान की गहराई में जाने पर असंभव लगने वाली बात संभव लगने लगती है और जो बात संभव लगती है, वह असंभव बन जाती है। यह सार परिवर्तन हो सकता है इन्द्रिय-संवर के द्वारा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय-संवर की प्रक्रिया

प्रश्न होता है–इन्द्रिय-संवर कैसे होता है ? क्या इन्द्रियों का संवर किया जा सकता है ? क्या जीभ पर कोई चीज रखें और वह अच्छी है या बुरी, इस भाव से बचा जा सकता है ? क्या सामने रूप आने पर वह सुन्दर है या असुन्दर, इससे बचा जा सकता है ।

हां, यह सब संभव है । जीभ पर चीज रखें तो यह पता लग सकता है कि वह मीठी है या कड़वी या तिक्त ? आगे की स्थिति में यह पता लगना भी बंद हो जाता है । जीभ के ज्ञानांकुर अपना काम बंद कर देते हैं । संवेदन-केन्द्र भी अपना काम समाप्त कर देते हैं । यह संभव है, क्योंकि जब व्यक्ति संवेदन की भूमिका से ऊपर उठकर ज्ञान की भूमिका में जाता है, चैतन्य के अनुभव में जाता है तब संवेदना की भूमिका नीचे रह जाती है और ज्ञान की भूमिका ऊपर आ जाती है । इसके उपाय का निर्देश करते हुए जयाचार्य ने लिखा है–'ते जीत्या मन थिर करी'–मन को स्थिर कर इन्द्रियों को जीता जा सकता है । हम लोग इन्द्रियों को जीतने का सीधा प्रयत्न करते हैं । सीधा इन्द्रियों को जीतना कभी संभव नहीं होता । आंख को जीतना, कान को जीतना, जीभ को जीतना कभी संभव नहीं है । वास्तव में उनको जीतना ही नहीं है वे तो लड़ती ही नहीं हैं । इन्द्रियां बेचारी कब लड़ती हैं, कब हमें सताती हैं कि हम उनको जीतें । वे बेचारी कुछ भी नहीं करतीं । वे तो ज्ञान की धारा हैं । उनके साथ लड़ना हमारी भ्रांति है । यह तो ठीक वही बात है कि एक चिड़िया कांच पर बैठी है और अपने प्रतिबिम्ब पर चोंच मारती चली जाती है ।

एक सिंह कुएं पर गया । जल में प्रतिबिम्ब देखा । सिंह की आकृति देख उसने दहाड़ा । प्रतिबिम्ब भी दहाड़ा । उसने सोचा–मेरा प्रतिद्वन्द्वी दहाड़ रहा है । वह उससे लड़ने के लिए कुएं में कूद पड़ा । दूसरे को मारने वाला स्वयं पानी मे छटपटा कर मर गया ।

आज मनुष्य भी यही कर रहा है । वह अपने ही प्रतिबिम्ब से लड़ने की बात सोच रहा है । इन्द्रियां हमारी ज्ञानधारा है । उसके साथ लड़ना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिबिम्ब के साथ लड़ना है। इन्द्रियों के साथ लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। मन के साथ लड़ना आवश्यक है। जिसने मन को समझ लिया, वह इन्द्रियों के साथ आने वाली मूर्च्छा को समाप्त कर देता है। प्रियता और अप्रियता, राग और द्वेष, मूर्च्छा– ये सब मन के साथ आती हैं। ये इन्द्रियों की ज्ञानधारा में मिलती हैं। हम उस मूर्च्छा को समझें, मोह को समझें। उसको समझ लेने पर तटस्थता आ सकती है। इन्द्रियों के संवर से पहले आवश्यक है मन का संवर। मन का संवर होने पर इन्द्रियों का संवर अपने आप हो जाता है। जिस व्यक्ति का मन शांत है, चित्त शांत है, बुद्धि शांत है, उसके समक्ष रूप आए तो वह रूप होगा, ज्ञेय होगा किन्तु विकार नहीं होगा। ज्ञेय और विकार के बीच बहुत सूक्ष्म भेद-रेखा है। दोनों को अलग समझना चाहिए। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श–ये सब ज्ञेय हैं, जानने योग्य हैं।

हेय, ज्ञेय और उपादेय

तीन प्रकार के पदार्थ हैं। कुछ पदार्थ हेय हैं, कुछ उपादेय हैं किन्तु ज्ञेय सब हैं। कीचड़, दलदल कूड़े करकट का ढ़ेर–यह सब ज्ञेय है ज्ञेय की कोई सीमा नहीं होती। पदार्थ चाहे अशुचि हो या शुचि, अनित्य हो या नित्य, रमणीय हो या अरमणीय, सब ज्ञेय होते हैं, जानने योग्य होते हैं। एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है, जो ज्ञेय न हो। ज्ञान की सीमा से परे कोई पदार्थ नहीं होता। ज्ञान अनन्त है तो ज्ञेय भी अनन्त है। ज्ञेय सब कुछ है।

दूसरा प्रश्न है–हेय और उपादेय का, छोड़ने का और स्वीकार करने का। यह ज्ञान की सीमा नहीं है। यह मूर्च्छा की सीमा है। जिस वस्तु के साथ जुड़ने पर हमारी मूर्च्छा जागती है, वह वस्तु हेय बन जाती है और जिस वस्तु के साथ जुड़ने पर हमारी मूर्च्छा टूटती है, वह वस्तु हमारे लिए उपादेय बन जाती है। हेय और उपादेय के बीच भेद-रेखा खींची जा सकती है, किन्तु ज्ञेय के बीच में कोई भेद रेखा नहीं खींची जा सकती। जब मूर्च्छा अलग होती है, चैतन्य की धारा अलग होती है तब ज्ञेय ज्ञेय रह जाता है, हेय और उपादेय की सीमा अलग हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन का संदर्भ

वेदान्त ने एक सिद्धांत का विकास किया। उसे विवर्त वाद कहा गया। उसके अनुसार केवल चैतन्य ही सत्य है, संसार सारा झूठा है, माया है, प्रपंच है। आदमी भ्रांति में जीता है। कोई आदमी अंधेरे में जाता है। वहां रस्सी पड़ी होती है। वह मान लेता है कि यह सर्प है। सर्प के भय से वह भाग जाता है। रस्सी में सांप का भ्रम हो गया। रस्सी सांप की भांति कभी काट नहीं सकती किन्तु भ्रांति या मिथ्या धारणा के कारण रस्सी में सांप का आरोप कर लिया जाता है। वैसे ही सारा वस्तु-जगत् मिथ्या धारणा है। वास्तव में चैतन्य ही यथार्थ है। यह एक दृष्टि है।

जैन दर्शन के अनुसार चेतन भी वास्तविक है और अचेतन भी वास्तविक है। दोनों वास्तविक हैं। अचेतन भ्रम नहीं है। जैसा स्वतंत्र अस्तित्व चेतन का है, वैसा ही स्वतंत्र अस्तित्व अचेतन का है। दोनों के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं है। दोनों वास्तविक हैं, यथार्थ है। यह एक दृष्टि है।

जैन दर्शन के अनुसार चेतन भी वास्तविक है और अचेतन भी वास्तविक है। अचेतन भ्रम नहीं है। जैसा स्वतंत्र अस्तित्व चेतन का है, वैसा ही स्वतंत्र अस्तित्व अचेतन का है। दोनों के अस्तित्व में कोई अन्तर नहीं है। दोनों वास्तविक हैं, यथार्थ हैं।

साधना का संदर्भ

दर्शन के क्षेत्र में दृष्टिकोण भिन्न हो सकता है किन्तु जहां साधना का प्रश्न है वहां वेदान्त का दृष्टिकोण भी यही है कि हम केवल चैतन्य का अनुभव करें, जैन दर्शन का दृष्टिकोण भी यही है कि हम केवल चैतन्य का अनुभव करें। इन्द्रियों पर विजय पाने का सहज-सरल मार्ग है चैतन्य का अनुभव। कायोत्सर्ग चैतन्य के अनुभव की प्रक्रिया है। शरीर के कण-कण में चित्त को ले जाएं और उसमें चैतन्य का अनुभव करें। शरीर प्रेक्षा में भी प्रत्येक अवयव में चैतन्य का अनुभव किया जाता है। जब चैतन्य का अनुभव होता है, अपनी परिक्रमा होती है तब इन्द्रियां अपने आप विजित हो जाती हैं, मूर्च्छा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की धारा विच्छिन्न हो जाती है। आवश्यक है अपनी परिक्रमा करना।

अपनी परिक्रमा

महादेव ने अपने दोनों पुत्रों से कहा–'जाओ, तीन लोक की परिक्रमा कर आओ। जो पहले आएगा, वह पुरस्कृत होगा, विजयी होगा और जो बाद में आएगा, वह पराजित समझा जाएगा।' दो पुत्र– एक का नाम था गणेश और दूसरे का नाम था कार्त्तिकेय। कार्त्तिकेय को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने सोचा– मेरा वाहन है मयूर। वह बहुत ही शक्तिशाली और तीव्रगामी है। मैं ही विजयी होऊंगा। गणेश ने सोचा– मेरा वाहन है चूहा। कैसे परिक्रमा कर पाऊंगा ? मै भारी-भरकम और चूहा छोटा सा। विजयी होने का प्रश्न ही नहीं है। वह निराश हो गया।

कार्तिकेय अपने वाहन पर बैठा और त्रिलोक की परिक्रमा के लिए चल पड़ा।

गणेश ने सोचा–निराश होने से क्या बनेगा ? चिन्ता नहीं, मुझे चिन्तन करना चाहिए। कोई उपाय प्राप्त हो जाए।

आचार्य तुलसी ने एक सूत्र दिया–चिन्ता नहीं, चिन्तन करो। जो आदमी चिन्ता में डूब जाता है, वह पहले ही क्षण हार जाता है। उसे विजय की आशा ही छोड़ देनी चाहिए। जहां-जहां चिन्ता घेरती है वहां-वहां पराजय व्यक्ति को व्यथित कर देती है। जहां चिन्ता छूटती है, चिन्तन आता है वहां सफलता चरण चूमने लग जाती है।

यही अन्तर है पदार्थ में और मूर्च्छा में। जो मूर्च्छा में डूबा, वह पदार्थ में डूबने वाला बन गया। मूर्च्छा के अलग होते ही पदार्थ भी उपयोगी बन जाता है। जो अन्तर हम पदार्थ में और मूर्च्छा में डाल सकते है, वही अन्तर चिन्ता और चिन्तन में डाल सकते है। चिन्ता का बोझ सिर पर न आए। चिन्ता के पानी से भरा यह घड़ा हमारे सिर पर न लदे। यदि वह लद गया तो हमारी गति कमजोर और मन्द बन जाती है। चिन्तन करने से सफलता अपने आप वरण करने आ जाती है।

गणेश ने चिन्ता छोड़, चिन्तन करना प्रारम्भ किया। समस्या पर एकाग्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए। संभव है—चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान केन्द्रित किया और उन्हें समस्या का सूत्र मिल गया। वे पुलकित हो उठे।

गणेश को सफलता का सूत्र मिला। उसने तत्काल शिव की परिक्रमा प्रारम्भ कर दी। तीन परिक्रमा कर वह बैठ गया।

कार्त्तिकेय देरी से पहुंचा। गणेश को वहां बैठा देख अपनी विजय पर प्रसन्न हुआ। सोचा—यह बुद्धू है। यहीं बैठा है। बेचारा जाता भी तो कैसे? पूजा मुझे मिलेगी, पुरष्कार मुझे ही मिलेगा।

गणेश ने कहा—पहले परिक्रमा मैंने की है। पुरस्कार मुझे मिलना चाहिए कार्तिकेय ने कहा—तुम झूठे हो। चूहे पर कैसे कर आए परिक्रमा? मैंने तीन लोक की परिक्रमा की है। मैं विजयी हूं। तुम हार गए, मैं जीत गया।

गणेश और कार्तिकेय- दोनों में विवाद होने लगा। महादेव ने कहा- गणेश! तुम अपनी बात को सिद्ध करो। गणेश बोला—मैंने आपकी परिक्रम की। आप में तीनों लोक समाहित हैं। शिव से भिन्न कोई संसार नहीं है सारा संसार शिव में है। शिव की परिक्रमा करने का अर्थ है संसार की परिक्रम करना।

महादेव ने गणेश की बात का समर्थन किया। गणेश जीता, कार्तिके हारा।

चैतन्य की परिक्रमा करें

जो व्यक्ति अपनी परिक्रमा कर लेता है, अपने चैतन्य की परिक्रमा कर लेता है वह जीत जाता है। चैतन्य में सब कुछ समाया हुआ है। चैतन्य जगत् की परिक्रमा करने वाला जीत जाता है और पदार्थ जगत् की परिक्रमा करने वाला हार जाता है। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है कि वह पदार्थ का और समूचे संसार का चक्कर लगाना चाहता है, उसे कभी सफलता नहीं मिलती। जिसने चैतन्य की परिक्रमा कर ली, अपने शिव की परिक्रमा कर ली, अपने महादेव की परिक्रमा कर ली, वह सफल हो गया।

हमारी समूची सफलता का सूत्र है— अपने चैतन्य का अनुभव। चैतन्य का अनुभव करने पर इन्द्रियों की समस्या, मूर्च्छा और राग-द्वेष की समस्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रियता और अप्रियता के संवेदन की समस्या अपने आप समाहित हो जाती है। उससे तटस्थ भाव जागृत होता है, समता जागृत होती है, सामायिक घटित होती है। ऐसा होने पर दुःखों का बंधन अपने आप टूट जाता है। अतृप्ति और आकांक्षा के द्वारा पैदा होने वाले बंधन और दुःख अपनी मौत मर जाते हैं। व्यक्ति एक नए संसार का अनुभव करता है। उस अनुभव की सृष्टि में प्रवेश कर वह इस भाषा में बोल उठता है–'संसार की परिक्रमा करने पर जो नहीं पाया, जो नहीं मिला, अपनी परिक्रमा करने पर वह सब कुछ मिल जाता है, जिसके मिल जाने पर फिर किसी वस्तु के मिलने की आकांक्षा शेष नहीं रहती।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर-चक्र का संतुलन और सामायिक

सत्य की खोज का अर्थ है– नियमों की खोज। प्राकृतिक जगत् में बहुत सारे नियम हैं। पौद्गलिक जगत् के अपने नियम हैं। आत्मिक जगत् के अपने नियम हैं। हमारे सशरीर चैतन्य के भी बहुत सारे नियम हैं। हमारा शरीर और भीतर की चेतना–इन दोनों के योग में बहुत सारे नियम प्राप्त हैं। नियम के आधार पर हमारा जीवन चलता है। जो नियमों को नहीं जानता, बदलने के सूत्र उसके हाथ में नहीं आ पाते। ऐसा नहीं है कि जो जैसा चल रहा है, वह वैसा ही चलता है। यदि हम नियमों को जान लें तो जो चल रहा है, उसे बदल सकते हैं। यदि हम नियमों को न जानें तो जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहेगा।

परिवर्तन का नियम

जो स्वर है, श्वास है, वह परिवर्तन का एक नियम है। प्राण का भी एक नाम है स्वर और उससे जुड़ा हुआ है श्वास। हमारे शरीर मे स्वर का एक चक्र चलता है। कभी दाईं नासिका से स्वर चलता है तो कभी बाईं नासिका से स्वर बदलता रहता है। प्राचीन लोगों ने कहा–अढ़ाई घड़ी से स्वर बदलता है। एक घड़ी अड़चास मिनट की होती है। वर्तमान के वैज्ञानिक अनुसंधाता कहते हैं–ढ़ाई घंटा से स्वर-चक्र बदलता रहता है। जब बायां स्वर चलता है तब एक प्रकार की क्रिया होती है। जब दायां स्वर चलता है तब दूसरे प्रकार की क्रिया होती है। इस पर प्राचीन काल में बहुत गहन अध्ययन हुआ और उसके आधार पर स्वरोदय शास्त्र का विकास हुआ। स्वर के आधार पर वर्तमान, भूत एवं भविष्य की स्थितियां बतलाई गईं। कभी कभी स्वर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आधार पर ऐसी चामत्कारिक बातें कही गईं, जिनकी सामान्य आदमी कल्पना भी नहीं कर सकता। वह उन्हें एक चमत्कार ही मानता है। वस्तुतः हम नियम को जानते हैं तो वह हमारे लिए एक नियम होता है और नियम को नहीं जानते हैं तो वही नियम हमारे लिए एक चमत्कार बन जाता है।

स्वरोदय शास्त्र

एक चामत्कारिक विधि है स्वरोदय शास्त्र। स्वर का बहुत विकास हुआ। किस स्वर में कैसी प्रवृत्ति करनी चाहिए, कैसी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए–इन सबका विधान किया गया। कहा गया–यदि गर्म प्रकृति का कोई काम करना है तो दायां स्वर चलना चाहिए। ठण्डे दिमाग से काम करना है, सौम्य और शांत काम करना है तो बायां स्वर चलना चाहिए। जब दोनों स्वर एक साथ चलने लग जाते हैं तब समाधि का कार्य होता है। उस समय केवल ध्यान आदि की साधना करनी चाहिए। न चल और न अचल, न सौम्य और न उष्ण, केवल समाधि की अवस्था। यह स्वर-विज्ञान की खोज एक बहुत बड़े विज्ञान की खोज है।

मस्तिष्कीय गोलार्द्ध-चक्र

आज के वैज्ञानिकों ने स्वर-चक्र के साथ एक दूसरी खोज की और वह है मस्तिष्क के गोलार्द्धों का चक्र। जैसे यह स्वर-चक्र चलता है वैसे ही मस्तिष्क के गोलार्द्धों का एक चक्र चलता है। इसका समय माना गया है नब्बे मिनट। नब्बे मिनट तक दायां मस्तिष्क काम करता है और नब्बे मिनट तक बायां मस्तिष्क काम करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि एक स्वर-चक्र चलेगा तो दूसरा चक्र बंद हो जाएगा। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि दायां मस्तिष्क काम करेगा तो बायां बिल्कुल बंद हो जायेगा। इसका तात्पर्य है– एक अधिक सक्रिय बन जाएगा तो दूसरा कम सक्रिय हो जाएगा।

मस्तिष्क का कार्य

प्रश्न होता है– मस्तिष्क का कार्य क्या है ? मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों का कार्य क्या है ? हमारा सारा संचालन मस्तिष्क के द्वारा होता है। मुख्यतया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मस्तिष्क या मेरुदण्ड के द्वारा हमारी प्रवृत्तियां संचालित होती हैं। दाएं मस्तिष्क का काम है– अनुशासन, धर्म आस्था, सौजन्य, अच्छा आचरण आदि। अध्यात्मविद्या-पराविद्या का पूरा काम दाएं मस्तिष्क का है। बाएं मस्तिष्क का काम है– पढ़ना, लिखना आदि। तर्क, गणित आदि जितनी लौकिक विद्याएं हैं, वे सब बाएं मस्तिष्क का कार्य हैं। दोनों का अपना अपना काम बंटा हुआ है। इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमारे हाथ में नियंत्रण और परिवर्तन के कई सूत्र आ जाते हैं।

ऋतुचक्र

आदमी की मनोदशा (Mood) बदलती रहती है। सुबह से शाम तक कम से कम सैकड़ों बार मूड बदलता होगा। एक बच्चे का मूड भी बदलता है, एक युवक का मूड भी बदलता है। समझदार और नासमझ–दोनों का मूड बदलता है। शायद ही ऐसा आदमी मिले, जिसका मूड न बदलता हो। बदलने का एक कारण है ऋतुचक्र। हमारे साथ एक ऋतु चक्र भी चलता है। एक वर्ष में छह ऋतुएं होती हैं–ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि। सूक्ष्म अध्ययन करने वालों ने बताया–आदमी एक दिन में छह ऋतुएं भोगता है। प्रातः काल का समय है तो बसंत ऋतु चल रही है। एक प्रहर बीतेगा, ग्रीष्म ऋतु आ जाएगी, सिर भी गरमाने लग जाएगा। किसी से ठण्डे दिमाग से बात करनी है तो प्रातःकाल करो। दोपहर एक बजे अच्छी बात करेंगे तो वह भी उल्टी पड़ जाएगी। उस वक्त सामान्य बात भले ही करें, बहुत महत्त्वपूर्ण बात नहीं करनी चाहिए। कोई महत्त्वपूर्ण कार्य से जुड़ी बात हो, सुझाव या मार्गदर्शन की बात हो तो ग्रीष्म ऋतु में मत करो। हो सकता है–लेने के देने पड़ जाएं। शाम का समय होता है वर्षा का। संध्या होते होते दिमाग ठंठा होने लगता है। प्रायः मंत्रणा का समय होता है सायं चार बजे के बाद। बारह बजे से चार बजे के बीच का जो समय हैं, उसमें मंत्रणा नहीं होनी चाहिए।

परिवर्तन के सूत्रों को जानें

यह ऋतु का चक्र बराबर चलता है। तीन ऋतुएं दिन में होती हैं और तीन ऋतुएं रात में। हम कितने चक्रों के बीच चल रहे हैं। स्वर-चक्र, ऋतुचक्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मस्तिष्कीय पटलों का चक्र । ये चक्र प्रकृति से उपलब्ध हैं । हम इन्हें जान लें तो परिवर्तन के सूत्र हाथ लग जाते हैं । यदि हम इन्हें जान लें तो परिवर्तन के सूत्र हाथ लग जाते हैं । यदि हम इन्हें नहीं जान पाते हैं, तो कुछ ऐसी बातें आ जाती हैं, जो वांछनीय नहीं होतीं ।

एक ब्राह्मण पैदल यात्रा कर रहा था । चलते-चलते जंगल आ गया । ब्राह्मण ने सोचा–यहां खुला स्थान है । भोजन बनाकर खाना खा लेना चाहिए । आटा दाल उसके पास थे । उसने इधर-उधर से पत्थर इकट्ठे किए । गीली मिट्टी का चौका बनाया । यह सारी तैयारी कर लकड़ियां बीनने चला गया । उसी समय एक गधा आया और वह उस चौके में बैठ गया । ब्राह्मण ने देखा-चौके में कोई बैठा है । इतने श्रम से बनाया चौका खराब हो गया है । समस्या हो गई रसोई बनाने की । रसोई कहां बनाए ? वह निराश स्वर में बोल उठा–दूसरा कोई होता तो उसे कहता–गधे हो, कुछ देखते नहीं । जब आप स्वयं आकर विराज गए हैं तो आपको क्या कहूं । आपके लिए कोई शब्द ही नहीं रहे । अनुपमेय हैं आप । मैं आपको क्या उपमा दूं ?

ऐसा जीवन में भी होता है । हम कोई चौका बनाते हैं और ऐसी घटना घट जाती है, जो समस्या पैदा कर देती है । जरूरी है ऐसी व्यवस्था करना, जिससे चौके की तरफ गधा आए ही नहीं । ऐसे परिवर्तन के नियमों को खोजना अपेक्षित है, जो समस्या को आने ही न दें ।

रहस्यपूर्ण प्रयोग

स्वर-चक्र का हमारे स्वभाव के साथ गहरा संबंध है । लौकिक और अलौकिक विद्याओं के साथ उसका गहरा संबंध है । हमारी मनोदशा के साथ भी उसका संबंध है । हमारे भाग्य के साथ भी उसका संबंध जुड़ा हुआ है । समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग सामान्य प्रयोग नहीं है । उसकी प्रयोग विधि बहुत सामान्य है– 'बाएं नथुने से श्वास लें और दाएं नथुने से श्वास निकालें फिर दाएं नथुने से श्वास लें और बाएं नथुने से श्वास निकालें' इस प्रकार श्वास की आवृत्तियां करते चले जाएं । यह प्रयोग इतना सा ही लगता है पर यह इतना ही नहीं है । यह बहुत रहस्यपूर्ण प्रयोग है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष

आजकल स्वरचक्र और मस्तिष्क पर बहुत वैज्ञानिक अनुसंधान चल रहे हैं। वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष है--जब बायां स्वर चलता है तब मस्तिष्क का दायां पटल सक्रिय हो जाता है और जब दायां स्वर चलता है तब मस्तिष्क का बायां पटल सक्रिय हो जाता है। हमारे हाथ में कुछ सूत्र आ गए। यदि हमें बहुत शांत, शालीन और अनुशासन में रहना है तो बाएं स्वर को चलाएं। इससे दायां मस्तिष्कीय पटल सक्रियं होगा, हमारी मनोदशा बदल जाएगी, उत्तेजना शांत हो जाएगी, अपने आपको जानने की, आत्मनिरीक्षण की वृत्ति जागेगी। यह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है--दाएं मस्तिष्क को जगाने के लिए बाएं स्वर का प्रयोग करें। जब जब हम बाएं स्वर को चलाते हैं तब तब ऐसा लगता है--दिमाग बिलकुल शांत होता जा रहा है, वातानुकूलन जैसी स्थिति का अनुभव होता है। हमने इस सचाई का अनुभव किया है। दाएं स्वर को बंद कर बाएं को चलाया और उसका लम्बे समय तक अभ्यास किया तो ऐसा अनुभव हुआ--भीतर में बिल्कुल शान्ति हो गई है। जो लोग चंचल मन वाले हैं, तनाव और अशान्ति में रहते हैं, उनका दायां स्वर चलेगा तो तनाव बढ़ेगा। तनाव को मिटाना है तो दाएं स्वर को बंद कर बाएं स्वर को चलाएं। थोड़ी देर में तनाव अपने आप कम होता चला जाएगा।

समस्या : समाधान

प्रत्येक व्यक्ति समस्याग्रस्त है। आजकल विद्यार्थी भी समस्या बन रहा है। विद्यार्थी उद्दंड और अच्छृंखल क्यों है ? जिस विद्यार्थी का दायां मस्तिष्क सक्रिय नहीं है, वह बहुत उद्दंड और उच्छृंखल होगा। बाएं स्वर को चलाना उसके लिए बहुत उपयोगी है। हमारी जितनी सृजनात्मक और रचनात्मक प्रवृत्तियां हैं, जो शक्तियां हैं, उनका विकास करना है तो बाएं स्वर को चलाकर दाएं मस्तिष्क पटल को सक्रिय करना बहुत उपयोगी है। जो लोग बहुत कमजोर हैं, भीरु और डरपोक हैं, दीनता और निराशा की भावना से भरे रहते हैं, उनके लिए भी दाएं स्वर का प्रयोग बहुत हितकर होता है। दायां स्वर चले तो ये सारी समस्याएं मिट जाएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्योदय : भाग्योदय

समस्या यह है--कब बाएं स्वर को चलाएं और कब दाएं को चलाएं ? इस समस्या को समाधान देने वाली एक विधि का विकास किया गया और वह है समवृत्ति श्वास प्रेक्षा । यह अनुलोम-विलोम प्राणायाम नहीं है किन्तु ध्यान का एक प्रयोग है । हम समता की बात करते हैं, साम्य योग और सामायिक की बात करते हैं । जीवन में समता आनी चाहिए किन्तु जिसका नाड़ीतंत्र संतुलित नहीं है, स्वचक्र संतुलित नहीं है, मस्तिष्क का दायां और बांयां पटल संतुलित नहीं है, उसमें समता का विकास कितना होगा । समता के लिए इस संतुलन को बनाना जरूरी है । बहुत सारी बातें आ जाती हैं किन्तु समता नहीं आती है तो सब कुछ व्यर्थ सा हो जाता है । दूसरी भाषा में कहा जा सकता है--जिसमें समता नहीं जागती, उसका भाग्योदय ही नहीं होता, सब कुछ होने पर भी वह रिक्त बना रहता है ।

कुंती की सीख

कुंती पांडवों के साथ जंगल में रह रही थी । कुछ स्त्रियों को इस बात का पता चल गया । वे इकट्ठी होकर कुंती से मिलने चली आईं । महिलाओं ने कुंती से निवेदन किया-- महारानी जी ! आप जंगल में पधारी हैं । हमें आपके दर्शनों का कब मौका मिलता है ? आप हमें कुछ सीख दें । कुंती के मन में गहरी वेदना थी फिर भी वह कुछ शांत हुई । उसने कहा--

भाग्यवंतं प्रसूयेथाः, मा शूरान् मौंश्च पंडितान् ।
शूराश्च कृतविद्याश्च, बने सीदंति मत्सुताः ॥

तुम स्त्री हो, माता हो ! तुम बेटे को जन्म दो तो भाग्यवान् को जन्म देना । न शूरवीर को पैदा करना, न विद्वान् को पैदा करना और न पंडित को पैदा करना । जन्म दो तो भाग्यवान् को जन्म दो ।

महिलाओं ने पूछा--क्यों ?

कुंती ने कहा-- देखो ! ये मेरे पुत्र सामने खड़े हैं । ये कितने शूरवीर हैं, पुरुषार्थी और पराक्रमी हैं । कितने कृतविद्य हैं । इन्होंने सारी धनुर्विद्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को हस्तगत कर लिया है फिर भी जंगल में ठोकरें खा रहे हैं। इसलिए मेरी एक ही सीख है– भाग्यवान् पुत्र को ही जन्म देना।

भाग्य है तो सब कुछ है। वह नहीं है तो विद्या और पराक्रम ठोकरें खाते हैं।

समता : भाग्य

हम इस घटना को दूसरे संदर्भ में देखें। भाग्योदय के स्थान पर साम्योदय कर दें। समता को उत्पन्न करो। समता है तो सब कुछ है। वह नहीं है तो कुछ भी नहीं है। जीवन की दो धाराएं हैं– लौकिक धारा और अलौकिक धारा। अलौकिक धारा अध्यात्म की धारा है। जिस व्यक्ति ने आध्यात्मिक जीवन जीना शुरू किया है और उसके जीवन में समता नहीं आ पाई है तो मानना चाहिए– उसने जीवन में कुछ भी नहीं पाया है। पराक्रम और विद्वत्ता का कोई मूल्य नहीं है। व्यक्ति कितना ही पराक्रमी और विद्वान् हो किन्तु यदि उसके जीवन में समता का अवतरण नहीं हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ। लौकिक भाषा में कहा जा सकता है–व्यक्ति कितना ही पढ़ा लिखा हो, विद्वान् और पराक्रमी हो, यदि भाग्य उसका साथ नहीं देता है तो सब कुछ हो जाने पर भी वह कुछ कर नहीं पाता।

संतुलन और समता

धार्मिक जीवन का सबसे बड़ा सूत्र है–समता की साधना, सामायिक की आराधना। स्वर-संतुलन के द्वारा हम इस सूत्र को खोज सकते हैं। न बायां स्वर अधिक सक्रिय और न दायां स्वर अधिक सक्रिय। दोनों स्वर संतुलित रहें तो जीवन में समता का अवतरण हो सकेगा। दायां स्वर अधिक सक्रिय होगा तो क्रोध ज्यादा आना शुरू हो जाएगा, उत्तेजना एवं आक्रामक वृत्ति बढ़ेगी। बायां स्वर अधिक सक्रिय होगा तो डर, भय और हीन भावना बढ़ेगी। यह एक प्रकार की विषमता की स्थिति है। समता वहां है, जहां न भय है और न उद्दंडता। कुल लोग ऐसे होते हैं, जो बहुत उद्दंड होते हैं, उनके लिए डर नाम का कोई शब्द नहीं होता। जब तक कोई कुछ न करे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तक सब कुछ ठीक है। किसी के कुछ कहते ही व्यक्ति गुस्से में भर जाता है। बहुत बार ऐसी धमकियां भी दे देता है–मैं घर से भाग जाऊंगा, छत से नीचे गिर जाऊंगा आदि-आदि। दूसरों को डराना-धमकाना उसके स्वभाव का एक अंग बन जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बहुत दब्बू और डरपोक होते हैं। घर से बाहर जाने में उन्हें डर लगता है। एक युवक ने कहा–'मेरी बहुत विचित्र स्थिति है। मैं किसी से काम की बात नहीं कर सकता। व्यापार नहीं चला सकता। किसी के सामने आते ही हार्ट धक् धक् करने लग जाता है।' हमें ऐसे सूत्र को खोजना है, जिससे ये दोनों वृत्तियां न हों, केवल समता की वृत्ति हों। न उद्दंडता और न भय। अभय हो और उसके साथ हो अहिंसा, मैत्री एवं अनुशासन का योग।

साम्यवाद

हमारा सारा व्यवहार और आचरण समता से संचालित हो तो उससे बढ़िया कोई प्रणाली नहीं हो सकती। जो लोग कई दशकों से साम्यवाद के विकास में लगे हुए हैं, वे आज कह रहे हैं– साम्यवाद हमारे लिए कोई माडल नहीं है। लोकतंत्र और स्वतन्त्रता पर पूंजीवाद का एकाधिकार नहीं है। ये स्वर साम्यवाद से जुड़े लोगों के हैं। इसका अर्थ है–हमारा आचरण समता से अनुस्यूत नहीं रहा और इसीलिए साम्यवाद सफल नहीं हो सका। जहां समता है वहां विषमता पनप नहीं सकती। जहां विषमता है वहां अवश्य ही समता का अभाव है। अध्यात्म के आचार्यों ने लिखा– हमारे आचरण का कोई आचरण का कोई चरम बिन्दु है तो वह है समता। जिस दिन समता एवं सामायिक का विकास होगा, वह दिन धन्य होगा। राजनैतिक प्रणाली हो या सामाजिक प्रणाली–हम इन विभिन्न प्रणालियों का समता के नियमों के द्वारा संचालन करें तो एक स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन प्रणाली का विकास हो सकता है। उनमें एक नियम है स्वर चक्र के संतुलन का, समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का। इसके द्वारा वृत्तियों में संतुलन स्थापित कर समतामय जीवन का निर्माण किया जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्विचारता और सामायिक

जैन परंपरा में दो शब्द प्रचलित हैं–ध्यान और सामायिक। सामायिक भी ध्यान है, किन्तु वह ध्यान से भिन्न भी है। क्योंकि ध्यान में दूसरे से सम्बन्ध होता है ? जैसे ही मैं कहूं कि ध्यान करो, प्रश्न होगा कि किसका ध्यान करें ? कैसे करें ? कहां करें ? कौन करे ? ध्याता अलग हो जाता है, ध्येय अलग हो जाता है, ध्यान की पद्धति अलग हो जाती है, ध्यान का साधन अलग हो जाता है। ये सारे कर्ता, कर्म, आधार आदि अलग-अलग खड़े हो जाते हैं। आप पूछेंगे कि किसका ध्यान करें ? बताना होगा कि अर्हम् का ध्यान करें या अमुक आकृति का ध्यान करें, अमुक शब्द का ध्यान करें। ध्येय बताना होगा। जब तक ध्येय नहीं बताया जाएगा, आप ध्यान नहीं कर सकेंगे। किन्तु निर्विचारता की स्थिति में ये सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। दूसरा समाप्त हो जाता है। दूसरा कोई भी नहीं रहता। वहां ध्याता अलग नहीं रहता। ध्यान अलग नहीं रहता। ध्येय अलग नहीं रहता। वही ध्याता, वही ध्यान, वही ध्येय, वही ध्यान का साधन और वही ध्यान का आधार होता है। सारे कारक एक हो जाते हैं। सारे कारक समाप्त हो जाते हैं। भेद समाप्त हो जाता है और अभेद प्राप्त हो जाता है।

आत्मा और सामायिक

निर्विचारता की स्थिति में केवल सामायिक होती है। सामायिक का मतलब है–समय में होना। समय का अर्थ है–आत्मा। आत्मा में होना ही सामायिक है। जहां होने की स्थिति है, वहां बनने की स्थिति समाप्त हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान महावीर से पूछा गया–'भंते ! के सामाइए ? के सामाइयस्स अट्ठे'–सामायिक क्या है ? सामायिक का अर्थ क्या है ?

भगवान ने कहा–'आया खलु सामाइए । आया सामाइयस्स अट्ठे ।'

–गौतम ! आत्मा सामायिक है । आत्मा ही सामायिक का अर्थ है ।

सामायिक का अर्थ है–आत्मा में होना, अपने में होना । जहां अपने में होने की बात है वहां ध्यान करने की बात नीचे रह जाती है । सामायिक में हम किसी का ध्यान नहीं करते, केवल अपने अस्तित्व मे होते हैं । अपने अस्तित्व में होना ही सामायिक है और यही है निर्विचारता की स्थिति । जब तक हम अपनी आत्मा में नहीं होते तब तक निर्विचारता की कल्पना भी नहीं कर सकते, निर्विचार नहीं हो सकते । प्रकारान्तर से कोई न कोई विचार हमें घेरे रहेगा और विचारों का द्वन्द्व चलता रहेगा । जो आत्मा में होता है, वह जानने-देखने की क्रिया करता है, और कुछ भी नहीं करता, उस स्थिति में सामायिक होता है और उसी स्थिति में निर्विचारता आती है । बहुत अच्छा तो है कि निर्विचार ध्यान की अपेक्षा सामायिक ही कहें और शब्द का यह चुनाव बहुत अच्छा है । भगवान् महावीर ने यह शब्द दिया है ।

दुःख मुक्ति का उपाय

एक व्यक्ति मुनि के पास आया और बोला–'संसार में बहुत सारे दुःख हैं । इन दुःखों से छुटकारा कैसे मिले ? उपाय बताएं ।' मुनि ने कहा, 'देखो, कठिन प्रश्न है । पूछ ही लिया तो उत्तर देना पड़ेगा, अन्यथा मैं उत्तर नहीं देता । बड़ा जटिल सवाल है । एक उपाय बताए देता हूं । जाओ, तुम उस आदमी का अंगरखा ले आओ, जिसने जीवन में कभी दुःख का स्पर्श न किया हो । उसका अंगरखा पहन लो, तुम्हारा दुःख छूट जाएगा ।'

उसने कहा– 'बहुत सीधा उपाय बताया आपने ! मैं घूमूंगा और अंगरखा प्राप्त करूंगा । ऐसा आदमी मिल ही जाएगा, जिसने कभी दुःख का अनुभव न किया हो ।'

वह घर से चला । सबसे निकट के गांव में गया । गृहस्वामी से बोला, 'तुम्हारा अंगरखा लेने आया हूं । अंगरखा देने से पहले मुझे तुम यह बताओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि तुम्हारे जीवन में कभी दुःख तो नहीं आया ?' गृहस्वामी ने कहा–'इस दुनिया में जीना और दुःख का न होना–कैसी बात करते हो ? कौन आदमी ऐसा होगा, जो इस दुनिया मे जीता है और दुःख का अनुभव नहीं करता ! मैं तो बहुत दुःखी हूं। मेरे पास धन बहुत है। किन्तु लड़का नहीं है। क्या यह दुःख नहीं है ? बहुत बड़ा दुःख है।'

उसने कहा– 'नहीं चाहिए तुम्हारा अंगरखा।'

वह दूसरे घर में गया। पूछा–'तुम्हारे कोई दुःख तो नहीं है ?' गृहस्वामी बोला–'दुःख पूछते हो ! यह टूटा-फूटा मकान। ये टूटे-फूटे बरतन। ये फटे पुराने कपड़े, फिर भी पूछते हो कि दुःख है या नहीं ? मैं अत्यन्त दुःखी हूं।'

उसने सोचा–बड़ा घर देखकर गया तो वहां भी दुःख है और छोटा घर देखकर गया तो वहां भी दुःख है।

वह तीसरे घर में गया। पूछा–'तुम्हें कोई दुःख तो नहीं है ?' उसने कहा–'परिवार हो और दुःख न हो– यह कैसे सम्भव है ? आए दिन पत्नी से झगड़ा होता है, कलह होती है। मैं दुःखी हूं।'

वह वहां से चला। घूमता गया, घूमता गया। बहुत घूमा। दिनों तक, महीनों तक घूमता रहा। गांव-गांव में अलख जगा दी। उसका संकल्प था कि अंगरखा पाना है और दुःख से परे होना है। घूमते-घूमते थक गया। निराश हो गया। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जो कह सके कि मैं दुःखी नहीं हूं। धनवान् दुःखी है। गरीब दुःखी है। संतान वाला दुःखी है। निःसंतान दुःखी है। सभी दुःखी हैं। वह थक गया। हैरान हो गया। असफल होकर वह गुरु के पास आया और बोला–'महाराज ! अंगरखा नहीं मिला। मैं तो सोचता था कि एक ही दिन में सफल हो जाऊंगा परन्तु मैंने महीनों तक खाक छान डाली। अन्त में असफल होकर आपके पास आया हूं। एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला, जो कह सके कि वह सुखी है और मैं उसका अंगरखा पहनकर दुःख से छुटकारा पा सकूं।'

गुरु ने कहा– 'कितने मूर्ख हो तुम ! नहीं जानते सचाई को, जो इस दुनिया में जन्म लेता है वह दुःखों से कभी मुक्त नहीं रह सकता।'

उसने कहा– 'महाराज ! जब आप इस सचाई को जानते थे तो मुझे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यर्थ ही क्यों भटकाया ? पहले ही दिन यह बात बता देते । आपने ही तो मुझे महीनों तक भटकाया है । आपने ऐसा क्यों किया ?'

गुरु ने कहा–'सत्य अपच होता है । परिश्रम के बिना सत्य पच नहीं सकता । यदि मैं पहले बता देता कि इस दुनिया मे जन्म लेने वाला कोई भी व्यक्ति दुःख से बच नहीं सकता, दुःख से मुक्त नहीं हो सकता, तो यह सचाई तुम्हारी समझ में नहीं आती । अब तुम जगह-जगह घूम आए हो, खूब भटक चुके हो । अब यह सचाई सहजतया समझ में आ सकती है कि इस दुनिया में कोई भी व्यक्ति दुःख से अस्पृष्ट रह नहीं सकता । यह सच इतना अपच होता है, दुष्पच होता है कि पहले ही क्षण में उसे पचाया नहीं जा सकता ।'

निर्विचार कैसे बनें ?

बहुत सारे व्यक्ति पूछते हैं–निर्विचार कैसे हो ? यदि पहले ही दिन यह बता दिया जाए कि निर्विचार ऐसे हुआ जा सकता है तो यह सच पचेगा नहीं । समझ में भी नहीं आएगा । पल्ले कुछ भी नहीं पड़ेगा । अभी तो आपको अंगरखे की खोज करनी है । घूमना है, भटकना है । घर-घर में अलख जगानी है । गांव-गांव और घर-घर में जाना है । सबको देखना है । सब कुछ देख लेंगे, चिन्तन की पूरी प्रक्रिया को देख लेंगे, विचारों की पूरी यात्रा कर लेंगे, परिक्रमा कर लेंगे, फिर यह बात समझ में आ जाएगी कि निर्विचारता का भी मूल्य है और इस प्रकार निर्विचार हुआ जा सकता है । यह जब तक नहीं होगा, यानी चिन्तन की पूरी यात्रा नहीं होगी, विचारों की परिक्रमा सम्पन्न नहीं होगी तब तक अचिन्तन की बात, न सोचने की बात समझ में नहीं आएगी और उसका मूल्य भी आप नहीं आंक पाएंगे ।

इस दुनिया में जीने वाला–शरीर, प्राण, मन और बुद्धि की सीमा में जीने वाला कोई भी व्यक्ति निर्विचार नहीं हो सकता । जैसे मोह, माया और ममता की सीमा मे जीने वाला कोई भी व्यक्ति दुःख से मुक्त नहीं हो सकता; वैसे ही बुद्धि और शरीर की परिधि के बीच में जीने वाला कोई भी व्यक्ति विचार से मुक्त नहीं हो सकता । यह बहुत बड़ी सचाई है । यह तभी समझ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आएगी जब हम भी अंगरखे की खोज मे गांव-गांव में भटक लेंगे, विचारों की पूरी यात्रा कर लेंगे और चिन्तन के पूरे संपर्कों को समझ लेंगे। यह बात तभी समझ में आ सकेगी, तभी इस सचाई को जान सकेंगे, पहचान सकेंगे, पचा सकेंगे।

आकर्षक है निर्विचारता की बात

अचिन्तन और निर्विचारता की बात बड़ी आकर्षक लगती है, क्योंकि हम निरन्तर चिन्तन में जी रहे हैं और चिन्तन में जीने का अनुभव कर रहे हैं। किन्तु जब हमारे सामने अचिन्तन की बात आती है, नहीं सोचने की बात आती है, विचार-शून्य होने की बात आती है तब सहज ही आर्कषण पैदा हो जाता है, मन होता है कि वैसा जीवन जीया जाए। क्या यह सम्भव है ? क्या ऐसा हो सकता है कि आदमी बिना चिन्तन और विचार-शून्यता का जीवन जी सके। विचार का इतना तीव्र प्रवाह और इतनी लम्बी शृंखला है कि कहीं भी उसका तान्ता टूटता नहीं है। एक के बाद एक विचार आता जाता है। कहीं वह रुकता नहीं। निरन्तर गतिशील रहता है। उसका कहीं अन्त नहीं आता। ऐसी स्थिति में क्या यह सम्भव है कि हम निर्विचारता की बात सोच सकें और ऐसा जीवन जी सकें ? यह प्रश्न सहज है। ऐसी जिज्ञासा होती है और आकर्षण भी पैदा होता है। इसी के आधार पर हम इस दिशा में प्रयत्नशील हो जाते है।

मूल्य अचिन्तन का

चिन्तन की अपेक्षा अचिन्तन का बहुत बड़ा मूल्य है। यह बहुत अर्थवान् बात है। हम यह जानते हैं कि अधिक सोचना, अधिक चिन्तन करना शक्ति को क्षीण करना है। हर कर्म या प्रवृत्ति शक्ति को क्षीण करती है। शरीर का कर्म, वाणी, मन या चिन्तन का कर्म–प्रत्येक कर्म शक्ति का ह्रास करता है। शरीर शास्त्री बतलाते हैं कि प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ हमारे शरीर में विष पैदा होता है, शक्ति क्षीण होती है। जो आदमी बहुत सोचता रहता है, उसके बीमारियां पैदा हो जाती हैं, मानसिक विकृतियां पैदा हो जाती हैं। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धिजीवी लोग हैं, उनकी शक्ति ज्यादा क्षीण होती है। वे पेट की बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। आंतें खराब हो जाती हैं। इसका कारण है अधिक चिन्तन, अधिक सोचना। चिन्तन शरीर का धर्म हो सकता है। जो शरीर का धर्म होगा, उसकी एक सीमा होगी। सीमा से ज्यादा प्रयत्न भी हानिकारक होता है।

अचिन्तन है आत्मा का धर्म

अचिन्तन शरीर का धर्म नहीं है। अचिन्तन शब्द और रूप का कार्य नहीं है। वह आत्मा का धर्म है, स्वभाव है। अचिन्तन हमारा स्वभाव है। जो स्वभाव होता है, उससे शक्ति क्षीण नहीं होती। हम अचिन्तन के क्षणों में कितने ही रहें, शक्ति क्षीण नहीं होगी। उससे शक्ति बढ़ेगी। चिन्तन से ऊर्जा समाप्त होती है। क्योंकि चिन्तन के लिए ऊर्जा चाहिए, ईंधन चाहिए। जिसे ईंधन की जरूरत होती है, वहां ईंधन समाप्त भी होता है। अचिन्तन के लिए प्राणिज ऊर्जा की कोई जरूरत नहीं होती। अचिन्तन के लिए ईंधन की भी कोई जरूरत नहीं होती क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव है, अखंड चेतना का सहज धर्म है। यह जानने और देखने की स्थिति है। इसमें कोई शक्ति खर्च नहीं होती। उस समय हम अपने मूल स्वभाव में होते हैं।

चिन्तन का कार्य

चिन्तन का काम है–शक्ति का व्यय करना। अचिन्तन की स्थिति में हमारी शक्ति बढ़ती है, घटती नहीं। अचिन्तन से शक्ति का विस्फोट होता है। हमारी जानने की शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि हम चिन्तन के द्वारा कभी नहीं जान सकते, नहीं जान पाते। हमारी क्षमता बढ़ जाती है। चिन्तन के द्वारा वही जाना जा सकता है, जो हमारी सीमा में होता है। अचिन्तन के द्वारा वे पदार्थ भी हमारे लिए दृश्य हो जाते हैं जो सीमा में नहीं हैं। उससे दूर की वस्तु को जाना जा सकता है, व्यवहित वस्तु को जाना जा सकता है और सूक्ष्म वस्तु को जाना जा सकता है। यह सब अचिन्तन के द्वारा हो सकता है। अचिन्तन बहुत ही मूल्यवान् है। हम उसके महत्त्व को समझते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उसका अंकन भी हमने किया है, किन्तु फिर प्रश्न वही है कि हम अचिन्तन की स्थिति तक कैसे पहुंचे। आप जल्दी न करें। निर्विचार की बात न सोचें। पहले अभ्यास प्रारम्भ करें। ध्येय बनाएं और उस ध्येय के साथ चलते चलें। इस प्रकार आप मन को एक अभ्यास देंगे, बुद्धि को एक अभ्यास देंगे। उसी प्रक्रिया से आप गुजरते जाएंगे, चलते जाएंगे। चलते-चलते एक ऐसी स्थिति आती है जहां आपकी एकाग्रता सध जाती है, आपका अभ्यास परिपक्व हो जाता है आप अप्रियता और प्रियता की मंजिल को थोड़ी पार कर लेते हैं। आप केवल जानने-देखने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इस स्थिति में निर्विचारता की बात समझ में आ सकती है।

जानें और देखें

जो देखता है वह सोचता नहीं और जो सोचता है वह देखता नहीं। देखना और सोचना– दोनों साथ-सथ नहीं चल सकते। जो जानता है, वह विचारता नहीं और जो विचारता है, वह जानता नहीं। सोचना, विचारना, चिन्तन करना–यह सारी यांत्रिक प्रक्रिया है, मस्तिष्क की क्रिया है। यह मस्तिष्क के माध्यम से होती है।

देखना और जानना अखंड चेतना की क्रिया है, जो स्वभाव से स्फूत होती है। इसका उत्स, उद्गम-स्थल है अखंड चेतना, आत्मा। यह यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह मस्तिष्क की क्रिया नहीं है। यह मनोदैहिक क्रिया भी नहीं है। इसलिए हम अखंड चेतना से सम्पर्क करें, डुबकी लें। इसमें खतरा हो सकता है। जिसमें खतरा मोल लेने की क्षमता आ जाती है, जो मरने का साहस जुटा लेता है, वही आगे बढ़ सकता है। जो भी आदमी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहता है, उसे मरने की तैयारी करनी होती है। मरने की तैयारी के बिना अचिन्तन की बात नहीं आ सकती।

वही जा सकता है अचिन्तन में

कुछ लोग घबरा जाते हैं। ध्यान की गहराई में जाते हैं, विचित्र प्रकार के अनुभवों से गुजरते हैं किन्तु घबराकर ध्यान छोड़ देते हैं। पूछने पर कहते हैं–ध्यान की गहराई में गए। ऐसा लगा कि हार्ट बन्द हो गया है। घबराकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान ही छोड़ दिया। ऐसे लोग अचिन्तन में डुबकी नहीं लगा सकते।

आचार्य भिक्षु महान् साधक थे। उनके सामने एक लक्ष्य था। उन्होंने सबसे पहले मरने की बात तैयारी की। श्री मज्जयाचार्य ने लिखा–'मरण धार सुध मग लह्यो।' आचार्य भिक्षु ने मरने की तैयारी कर शुद्ध मार्ग प्राप्त किया। मरने की सोचे बिना किसी को शुद्ध मार्ग मिलता ही नहीं। सारे मार्ग भटकाने वाले मिलते हैं। पहुंचाने वाला मार्ग उसी व्यक्ति को मिलता जिसने मरने की पूरी तैयारी कर ली है। इतना साहस बटोर लिया है कि उसमें जीने की कोई आकांक्षा नहीं है और मरने का कोई भय नहीं है। वही व्यक्ति इस निर्विचारता की स्थिति में पहुंच सकता है और वही चेतना की अतल गहराई में डुबकी लगा सकता है। उसी व्यक्ति को अखंड चेतना के समुद्र में गोता लगाने का अधिकार है। इसलिए हम पूरी तैयारी करें और पूरी तैयारी के साथ 'न सोचने' की भूमिका में जाएं, अचिन्तन की भूमिका में जाएं शब्दों, रूपों और आकृतियों की सीमा को तोड़कर उस स्थिति में चले जाएं शब्दों, रूपों और आकृतियों की सीमा को तोड़कर उस स्थिति में चले जाएं, जहां कोई भी शब्द प्रभावित नहीं करता।

अप्रभावित बनें

ध्यान में शब्द प्रभावित करता है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ध्यान में खड़े थे। एक आदमी आया। उसने एक बात कह दी कि राजर्षि राज्य को छोड़कर मुनि बन गए। राज्य का भार लड़के को सौंप दिया। वह छोटा था। छोटे कंधों पर राज्य का बृहद् भार। शत्रुओं ने आक्रमण किया है। वे राज्य को नष्ट करने लगे हैं। इतने से शब्द थे। कोई घटना नहीं थी। राजर्षि ने सुना। शब्दों ने इतना प्रभावित किया कि राजर्षि ध्यान में खड़े-खड़े लड़ने में लीन हो गए। युद्ध प्रारम्भ हो गया। वे शत्रुओं को परास्त करने लग गए। इतने में ही दूसरा आदमी आया और ध्यानस्थ राजर्षि को देखकर बोला–'कितने बड़े ध्यानी हैं! कितने महान साधक हैं! अचल ध्यान-मुद्रा में खड़े हैं! धन्य है, धन्य है, धन्य है!' राजर्षि ने इतना-सा सुना। चेतना मुड़ी। युद्ध-भूमि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ध्यान-भूमि में आ गए। फिर ध्यान की धारा अखंड रूप से प्रवाहित होने लगी।

शब्दों की परिधि में चलने वाला ध्यान शब्द से प्रभावित होता है। ध्यान करने वाला कभी लड़ाई लड़ने लग जाता है और कभी आत्म साधना की बात सोचने लग जाता है। वह रूप से भी प्रभावित हो जाता है।

अचिन्तन की स्थिति में जाने वाला, सामायिक में रहने वाला, अपनी आत्मा में स्थित रहने वाला न शब्द से प्रभावित होता है और न रूप से प्रभावित होता है। उसमें न शरीर का अध्यास होता है, न जीवन की आकांक्षा होती है और न मृत्यु का भय होता है। वह सबसे परे हो जाता है। वह सभी के गुरुत्वाकर्षण को तोड़कर आत्मा के उस अन्तरिक्ष में चला जाता है जहां भार की कोई अनुभूति नहीं होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समभाव है चेतना का तीसरा आयाम

हम मनुष्य हैं। मनुष्य हैं, इसलिए सौभाग्यशाली हैं। हमारे सौभाग्य का मूल आधार है– हमारी शक्तियों के विकास करने की क्षमता। इन्द्रिय चेतना, मानसिक चेतना और मनोतीत चेतना को विकसित करने की क्षमता हमारे भीतर है। इन्द्रिय चेतना प्राणी मात्र में होती है। अत्यन्त अविकसित प्राणियों–स्थावर प्राणियों में भी वह होती है। दो, तीन और चार इन्द्रिय वाले प्राणियों में वह चेतना उपलब्ध है किन्तु मनुष्य में इस चेतना को विकसित करने की अपूर्व क्षमता और संभावनाएं हैं। ऐसी संभावना दूसरे प्राणियों को उपलब्ध नहीं है। मानसिक चेतना की भी यही स्थिति है। मन दूसरे प्राणियों में भी होता है। पशुओं में भी मन होता है, किन्तु मन के विकास की जो संभावनाएं मनुष्य को उपलब्ध हैं, वे पशुओं को उपलब्ध नहीं हैं। मनुष्य मन का बहुत विकास कर सकता है, मन की शक्ति को शिखर तक ले जा सकता है।

मन की क्षमता

मनुष्य की इन्द्रिय चेतना भी बहुत क्षमताशील है और मानसिक चेतना भी अद्‌भुत संभावनाओं से भरी पड़ी है। हम इन्द्रिय-चेतना के विकास की संभावनाओं से परिचित हों तथा मानसिक चेतना के विकास की संभावनाओं से परिचित हों।

मन बहुत शक्तिशाली है। उसमें अनन्त शक्तियां हैं। मन के द्वारा स्मृति होती है, कल्पना और चिन्तन होता है। हम स्मृति करते हैं, इसलिए मन की क्षमता को जानते हैं। हम कल्पना करते हैं, इसलिए मन की क्षमता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से परिचित हैं। किन्तु मन की क्षमताएं इतनी ही नहीं हैं, और भी व्यापक हैं। वे व्यापक तब जानी जा सकती हैं और तब उनका विकास किया जा सकता है जब सबसे पहले हम ज्ञात क्षमताओं से कुछ दूर हट सकें। जब तक हम स्मृति, कल्पना और चिंतन के घेरे में रहेंगे तब तक मन की संभावित क्षमताओं के बारे मे हम जान नहीं पाएंगे। उनके प्रति विश्वास नहीं होगा और उन्हें उपलब्ध करने का कोई उपाय भी हस्तगत नहीं होगा।

कैसे हो क्षमता का विकास ?

हमने मन की एक सीमा बना ली है। हम उसके बाहर जाकर देखना नहीं चाहते। इस संकुचित दायरे को तोड़े बिना क्षमताओं का विकास नहीं हो सकता। स्मृति, कल्पना और चिन्तन– इन तीनों वलयों को तोड़े बिना हम अपनी मानसिक क्षमताओं का अंकन नहीं कर सकते। मन की शक्ति के द्वारा दूसरों के विचार जाने जा सकते हैं, दूसरों के विचारों को प्रभावित किया जा सकता है, संदेश भेजा जा सकता है, संदेश मंगवाया जा सकता है। मन की शक्ति से पौधों को भी प्रभावित किया जा सकता है जिस प्रकार चेतन को प्रभावित किया जा सकता है वैसे ही अचेतन को भी प्रभावित किया जा सकता है। मन से पदार्थ परिचालित किए जा सकते है, स्थानान्तरित किए जा सकते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जा सकते हैं। इस प्रक्रिया में केवल मन की शक्ति ही काम करती है। किसी को छूने की जरूरत नहीं है। जब मन जागृत हो, अभ्यस्त और प्रशिक्षित हो, ये कार्य सहज-सरल हो जाते हैं।

प्राण का दीप

प्रश्न होता है कि मन को प्रशिक्षित और अभ्यस्त कैसे किया जा सकता है। उसको जागृत करने का उपाय क्या है ?

मन को जागृत करने का एकमात्र उपाय है–जीवन की दिशा को बदलना, जीवन की गति को बदलना। श्वास को बदले बिना जीवन की दिशा को नहीं बदला जा सकता।। श्वास की गति को बदले बिना जीवन की गति को नहीं बदला जा सकता। हमारी सारी शक्तियों का प्रतिनिधि है–श्वास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राण। सारा जीवन प्राण के द्वारा संचालित है हम प्राणी हैं। प्राण है; इसलिए हम जीवित हैं। निष्प्राण का अर्थ है–मृत। जब तक प्राण का दीप जलता है तब तक सब कुछ है। हम ऐसा प्रयत्न करें, जिससे यह दीप सदा जलता रहे। ऐसे दीप इस दुनिया में जले हैं, जो शताब्दियों तक जलते रहे हैं। एक दीप वह होता है, जो घण्टा-भर जलकर बुझ जाता है। एक दीप वह होता है, जो दो-चार, दस-बीस दिन जल कर बुझ जाता है। तेल समाप्त हो जाता है, बाती जल जाती है, दीप बुझ जाता है। मनुष्य ने क्या नहीं खोजा! उसने ऐसे दीप जलाए जो सैकड़ों वर्षों तक जलते ही रहे।

इटली देश का एक किसान खेत में काम कर रहा था। काम करते-करते उसका फावड़ा एक स्थान पर अटक गया। आसपास से खोदना शुरू किया। वहां एक दरवाजा दिखाई दिया। दरवाजे को तोड़ा। जब उसके भीतर प्रवेश करने लगा तब उसे वहां प्रकाश दिखाई दिया। एक दीया जल रहा था। उसने सोचा–प्रेतात्मा है। भला, जमीन के भीतर दीया कैसे जले? वह निकट गया। उसने देखा– न तेल है और न बाती। वह बिना तेल और बाती का दीया था, उसके बुझने का प्रश्न ही नहीं होता। वह जलता रहा है और जलता ही रहेगा। वह निरन्तर जलने वाला दीया था।

ईंधन है श्वास

जब बाहर ऐसे दीप जलाए जा सकते हैं तब क्या भीतर ऐसे दीप नहीं जलाए जा सकते, जो सहस्राब्दियों तक निरन्तर जलते रहें? ऐसे दीप जलाए जा सकते हैं। उनके लिए अलग प्रकार की बाती चाहिए, अलग प्रकार का तेल चाहिए, जो कभी समाप्त न हो। ऐसे दीपों के लिए हवा की आवश्यकता नहीं होती। इनको जलने के विशेष ईंधन होते हैं। पहला ईंधन है–श्वास। श्वास के ईंधन से ही ऐसे दीप जलाए जा सकते हैं, जो निरन्तर जलते रहें। जिन लोगों ने श्वास की साधना नहीं की, श्वास को नहीं देखा, नहीं जाना, वे कभी भी प्रकाश-केन्द्र तक नहीं पहुंच सकते क्योंकि जब तक श्वास को नहीं देखा जाता तब तक विकल्पों का शमन नहीं हो पाता और जब विकल्पों का शमन नहीं होता, स्मृति और कल्पना की उधेड़बुन समाप्त नहीं होती,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तक निरन्तर जलने वाला बाती और तेल से शून्य दीप नहीं जलाया जा सकता। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जितने अर्हत्, तीर्थंकर या विशिष्ट ज्ञानी हुए हैं, विशिष्ट साधक हुए हैं, उन सबने श्वास का ईंधन काम में लिया है। वर्तमान के विशिष्ट साधक भी इसी ईंधन के सहारे प्रकाश तक पहुंचते हैं और अनागत काल में भी यही ईंधन प्रकाश तक ले जाने वाला होगा। यही एकमात्र उपाय है। श्वास का संयम और श्वास की गति का परिवर्तन–साधना की यह प्रमुख शर्त है।

श्वास, प्राण और मन

श्वास को देखने की बात बहुत छोटी लग सकती है किन्तु यह बहुत ही मूल्यवान् बात है। जिसे अब तक नहीं देखा, उसे देखना प्रारंभ कर रहे हैं। जिससे हम आज तक परिचित नहीं थे, हम उससे परिचित हो रहे हैं। जिसकी हमने उपेक्षा की, उसकी अपेक्षा कर रहे हैं। हम छोटा श्वास लेते थे, आज उसे दीर्घ कर रहे हैं। प्राणवायु को हम भीतर बहुत कम ले जा रहे थे, अब उसको अधिक ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्राणवायु के द्वारा जिन शक्तिकेन्द्रों को हम विकसित नहीं कर पा रहे थे, अब पूरे प्राणवायु का प्रयोग कर हम उन शक्ति केन्द्रों को विकसित कर पाएंगे। मन की शक्ति को विकसित करने के लिए प्राणवायु की शक्ति का विकास करना बहुत आवश्यक होता है। प्राण की शक्ति को विकसित करने के लिए श्वास की शक्ति बहुत जरूरी है। इसकी एक शृंखला है। सूक्ष्म शरीर से प्राण की शक्ति आती है। उस प्राण के द्वारा प्राणी बनता है और यह प्राण की धारा श्वास के सहारे चलती है। श्वास का सहारा लिये बिना, श्वास के रथ पर चढ़े बिना प्राण की धारा नहीं चल सकती। श्वास और प्राण, श्वास और मन–ये अभिन्न बन जाते हैं, अटूट कड़ी के रूप में काम करते हैं। एक कड़ी यदि अस्त-व्यस्त होती है तो दूसरी कड़ी भी गड़बड़ा जाती है। मन को हम सीधा नहीं पकड़ सकते। बहुत शक्ति चाहिए मन को पकड़ने के लिए। प्राण की धारा को सीधा नहीं पकड़ा जा सकता। किन्तु श्वास के माध्यम से प्राण को पकड़ा जा सकता है और प्राण के माध्यम से मन को पकड़ा जा सकता है। मन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को पकड़ने के लिए प्राण को पकड़ें और प्राण को पकड़ने के लिए श्वास को पकड़ें। जब श्वास की पकड़ आती है तब सारा व्यक्तित्व ही बदल जाता है। श्वास-परिवर्तन के द्वारा हम मानसिक विकास कर सकते हैं।

जरूरी है सामायिक

मानसिक विकास को बढ़ाने के लिए 'सामायिक' जरूरी होती है। जब तक सामायिक नहीं होती, मानसिक विकास भी पर्याप्त नहीं होता। सामायिक के बिना समता का विकास नहीं होता और जो विकास है, वह भी खंडित होने लगता है। जो निर्मित होता है वह टूटने लग जाता है। दोनों का योग है। मानसिक शक्ति का विकास हुए बिना सामायिक का विकास नहीं हो सकता और सामायिक का विकास हुए बिना मानसिक शक्ति का विकास नहीं हो सकता।

सामायिक हमारी चेतना का तीसरा आयाम है। हम चेतना के दो आयामों में जीते हैं, जिनका सम्बन्ध द्वन्द्व की आपूर्ति से है। हमारे जीवन में बहुत सारे द्वन्द्व हैं लाभ और अलाभ का एक द्वन्द्व है, सुख और दुःख का एक द्वन्द्व है, जीवन और मरण का एक द्वन्द्व है, निन्दा और प्रशंसा का एक द्वन्द्व है, मान और अपमान का एक द्वन्द्व है—ये पांच प्रकार के द्वन्द्व हैं। अध्यात्म शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र इन पांचों द्वन्द्वों के आधार पर चलते हैं। शकुन का शास्त्र भी इन्हीं द्वन्द्वों के आधार पर चलता है।

समभाव का आयाम

ज्योतिषि ग्रहों की गति के आधार पर लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण का निर्णय करता है। मनुष्य के भाग्य का निपटारा इन द्वन्द्वों के आधार पर होता है। जब इन द्वन्द्वों के विषय की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है तब द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। अध्यात्मशास्त्र इनसे प्रारंभ होता है किन्तु द्वन्द्वातीत चेतना के आधार पर चलता है। सामान्य जीवन में हम द्वन्द्वों से ही परिचित होते हैं। प्रतिकूल स्थिति में मन में शोक और अनुकूल स्थिति में मन में हर्ष आना स्वाभाविक है। हमने हर्ष और शोक—दोनों को स्वाभाविक मान लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् मानसिक चेतना के परे भी कोई संसार है–यह हमें ज्ञात ही नहीं है। हमारे जीवन का पूरा क्रम इन दो आयामों–इन्द्रिय चेतना और मनःचेतना की परिधि में चलता है। अध्यात्म का विकास वहां से शुरू होता है जहां ये आयाम टूट जाते हैं। वहां तीसरा नया आयाम खुलता है। वह है समभाव। वहां सारे द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। न शोक, न हर्ष। न सुख, न दुःख। न जीने का हर्ष और न मरने का शोक! न मान के प्रति आकर्षण और न निन्दा के प्रति प्रकंपन–इन दोनों से हटकर एक ऐसी स्थिति बन जाती है, जो संतुलित होती है। यह है चेतना का तीसरा आयाम। इस नये आयाम की उपलब्धि में ही जीवन की सफलता का सूत्र छिपा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक स्वास्थ्य और सामायिक

क्या हम स्वस्थ हैं ?–यह प्रश्न हम किसी दूसरे से न पूछें, अपने-आप से पूछें। इस प्रश्न का उत्तर किसी दूसरे से पाने का प्रयत्न न करें किन्तु अपने आप से ही इसका उत्तर पाने का प्रयत्न करें। यदि हमारे जीवन में समता है तो समझना चाहिए कि हम शरीर से भी स्वस्थ हैं और मन से भी स्वस्थ हैं। यदि समता नहीं हैं तो हम शरीर से भी स्वस्थ नहीं हैं और मन से भी स्वस्थ नहीं हैं। हम स्वास्थ्य को दो भागों में बांटते हैं। एक है शारीरिक स्वास्थ्य और दूसरा है मानसिक स्वास्थ्य। यदि हम गहरे में उतरकर देखें तो यह विभाजन जरूरी नहीं लगता। मन स्वस्थ है तो समझ लेना चाहिए कि शरीर स्वस्थ है। शरीर स्वस्थ है तो समझ लेना चाहिए कि मन स्वस्थ है। शरीर और मन–दोनों जुड़े हुए हैं। मन शरीर को प्रभावित करता है और शरीर मन को प्रभावित करता है किन्तु मन का प्रभाव शरीर पर गहरा होता है। यदि मन स्वस्थ है तो शरीर स्वस्थ होगा ही। मन का स्वास्थ्य समता से संबंधित है। यदि मन में समता है तो मानसिक स्वास्थ्य होगा और यदि समता नहीं है तो मन कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। सामायिक अथवा समता की साधना के जो सूत्र हैं, वे ही मानसिक स्वास्थ्य की साधना के सूत्र हैं।

अपने आपको जानें

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पहला सूत्र है–अपने आपको जानो। जो व्यक्ति अपने-आपको नहीं जानता, वह मनसा स्वस्थ नहीं होता। मानसिक स्वास्थ्य के लिए अपने-आपको जानना बहुत जरूरी है। जो अपनी क्षमता को नहीं जानता, अपनी अक्षमता को नहीं जानता, वह व्यक्ति मन से स्वस्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे हो सकता है ? हमारे में योग्यता है, क्षमता है, किन्तु हमने कभी अपने-आपको जानने का प्रयत्न नहीं किया। व्यक्ति सक्षम होते हुए भी अक्षमता अनुभव करता है। मन अनुताप से भर जाता है। अपने प्रति अभद्र व्यवहार देखकर व्यक्ति भभक उठता है, मन में असंतोष उभर आता है क्योंकि वह अपनी अक्षमता को नहीं जानता। जब वह अपनी अक्षमता को नहीं जानता तब वह दूसरों को ही देखता है, स्वयं को नहीं देख पाता। पिता के दो पुत्र हैं। पिता एक पुत्र को दायित्व सौंप देता है तब दूसरे के मन में असंतोष की ज्वाला उभर आती है। इसलिए उभरती है कि वह यह नहीं जानता कि वह इस दायित्व के लिए अक्षम है। जो व्यक्ति अपने आपको नहीं जानता वह अपने मन में सदा जलने वाली आग सुलगा देता है और उसमें सदा जलता रहता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए स्वयं की योग्यता और अयोग्यता का निरीक्षण बहुत आवश्यक है।

परिणामों की स्वीकृति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का दूसरा सूत्र है—परिणामों की स्वीकृति। हम प्रवृत्ति करते हैं, किन्तु उसके परिणामों को स्वीकार नहीं करते इसीलिए मन में असंतोष और अशांति पैदा होती है। कृत के परिणामों से जहां अपने-आप को बचाने की मनोवृत्ति होती है, वहां मानसिक स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाता है। रोग का एक कीटाणु उसमें घुस जाता है। परिणाम को स्वीकार करने के लिए मन बहुत शक्तिशाली चाहिए। जो मन शक्तिहीन होता है वह कभी परिणामों को स्वीकार नहीं कर सकता। हमें अच्छे या बुरे—सभी प्रकार के परिणामों को स्वीकारना चाहिए। इसमें कभी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। जिस व्यक्ति में परिणामों को स्वीकार करने का साहस नहीं होता, भय होता है वह परिणामों को दूसरे के माथे पर मढ़ देता है, स्वयं बच निकलना चाहता है। यदि परिणाम अच्छा है तो उसका श्रेय स्वयं लेना चाहेगा और यदि बुरा परिणाम है तो उसका अश्रेय दूसरे पर उंड़ेल देगा। यह साहसहीनता है। इससे मन मलिन होता है, बीमार होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य के प्रति समर्पण

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का तीसरा सूत्र है–सत्य के प्रति समर्पण। सत्य की व्याख्या बहुत ही जटिल है। किसे सत्य माना जाए ? हमें इसमें उलझना नहीं है। सत्य का अर्थ है–सार्वभौम नियम (युनिवर्सल ट्रुथ) मृत्यु एक सार्वभौम नियम है, यह एक बड़ी सचाई है। कोई भी इसे नहीं टाल सकता। इस दुनिया में तीर्थंकर भगवान्, अर्हत् मसीहा आदि-आदि अनेक शक्तिशाली व्यक्ति हुए हैं, जो इस शाश्वत नियम को नहीं टाल पाए हैं। कोई भी इस सार्वभौम नियम का अपवाद नहीं बन सकता। कोई अमर नहीं रह सकता। कोई भी प्राणी सदेह अमर नहीं होता। विदेह में जो अमर होता है, वह हमारे सामने नहीं है। मृत्यु एक सचाई है। कर्म एक सचाई है। काल एक सच्चाई है। वस्तु स्वभाव एक सचाई है। जो भी सार्वभौम सचाइयां हैं, व्यापक सत्य हैं, उनके प्रति जो समर्पित रहता है, वह मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रह सकता है।

एक व्यक्ति के पास एक घड़ी थी। वह गुम हो गई। व्यक्ति रोने लगा। उसका विलाप कई दिनों तक चलता रहा। उसके मुंह पर उदासी छा गई। जो अरबपति हैं, करोड़पति हैं, उनके जेब से भी यदि सौ रुपये गुम हो जाते हैं, तो उसका सारा दिन उदासी में बीतता है। इसका मतलब है कि वे सचाई के प्रति समर्पित नहीं हैं। वे इस सचाई को नहीं जानते कि जहां संयोग होता है वहां वियोग निश्चित है। हम इस सचाई के प्रति समर्पित हों–'संयोगाः विप्रयोगान्ताः'–संयोग विप्रयोग से जुड़े रहते हैं। जिस क्षण में संयोग होता है, उसी क्षण से वियोग का सिलसिला भी चालू हो जाता है। जन्म के साथ ही मृत्यु का क्षण भी प्रारंभ हो जाता है। जन्म का अंतिम परिणाम है मृत्यु। जन्म हो और मृत्यु न हो यह कभी संभव नहीं है। जो इस सचाई के प्रति समर्पित नहीं होते, वे असंतुलित और विकृत हो जाते हैं। उनका मन अस्वस्थ हो जाता है। मानसिक रोग आक्रान्त कर लेता है। जो मृत्यु की सचाई को जानते हैं वे किसी के मर जाने पर अपना संतुलन नहीं खोते। कुछ दुःख होता है, किन्तु वह भी स्थायी नहीं रहता, क्षणिक होता है। जिन्होंने इस शाश्वत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य के प्रति समर्पण नहीं किया, वे मत्यु की घटना से विचलित हो जाते हैं और अपने मन को रोगी बना देते हैं।

सहिष्णुता का विकास

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का चौथा सूत्र है– सहिष्णुता का विकास। सहिष्णुता को विकसित किए बिना कोई व्यक्ति संतुलित जीवन नहीं जी सकता। जो व्यक्ति सहिष्णु नहीं होता, वह अपने मन को सदा दुःख में डाले रहता है। कांच का बर्तन कब फूट जाए, कहा नहीं जा सकता। असहिष्णु व्यक्ति का मन कब टूट जाए, कहा नहीं जा सकता। सदा आशंका बनी रहती है। थोड़ी-सी कोई स्थिति आती है और तत्काल मन बेचैन हो उठता है। व्यक्ति ध्यान करने बैठता है। गर्मी के दिन हैं। पंखा अचानक बंद हो जाता है। अब मन ध्यान से हटकर पंखे में उलझ जाता है। मन तड़पने लगता है। मन इतना आकुल-व्याकुल हो जाता है कि बेचारा ध्यान कहीं अटक जाता है।

यह क्यों होता है ? यह इसलिए होता है कि व्यक्ति ने सहिष्णुता का मूल्यांकन नहीं किया। हजारों पदार्थों के उपलब्ध होने या न होने पर भी सहिष्णुता अपना मूल्य नहीं खोती। जीवन की सारी सुख-सुविधाएं उपलब्ध हों, किन्तु वे शाश्वत नहीं हैं। यह सार्वभौम नियम है कि वे प्राप्त होती हैं और दूर हो जाती हैं। जिस क्षण में वे छूटती हैं उस क्षण में क्या बीतती है, यह वही व्यक्ति जान सकता है, जिसने सहिष्णुता को नहीं समझा है। जिसने सहिष्णुता को साध लिया है, उसके लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुविधा-असुविधा कोई अर्थवान् नहीं होती। क्योंकि ऐसे व्यक्तियों ने अपने मन और अपने शरीर का ऐसा निर्माण कर डाला है कि वह हर स्थिति को झेलने में समर्थ और सक्षम होता है। जब हर स्थिति को झेलने का सामर्थ्य नहीं होता है तब अनेक समस्याएं उठती हैं, व्यक्ति घबरा जाता है। जो व्यक्ति कठिनाइयों में पला-पुसा, फिर कुछ सुविधाएं उपलब्ध हुईं। आराम में जीने लगा, फिर कठिनाइयां आ गयीं तो ऐसा व्यक्ति उन कठिनाइयों को झेल सकता है। वह विचलित नहीं होता। जिस व्यक्ति ने आग को झेला है, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हर आंच में से गुजरने में सफल हो जाता है। किन्तु जो व्यक्ति आराम में रहा है, जिसने कभी दुःख-दुविधाओं को नहीं देखा, वह व्यक्ति आकस्मिक कठिनाइयों में टूट जाता है। वह उनको सहन नहीं कर सकता। इसलिए विपदाओं को झेलने का अभ्यास करना चाहिए।

संकल्प की बाधाएं

लोग संकल्प करते हैं, पर अपने संकल्प पर टिक नहीं पाते। इसके तीन कारण हैं–

१. चित्त की चपलता।

२. असहिष्णुता।

३. इन्द्रियों की उच्छृंखलता।

अत्यक्तचित्तचापल्याः, अजितोग्रपरीषहाः।
अनिरुद्धाक्षसन्तानाः, प्रस्खलन्त्यात्मनिश्चये॥

–संकल्प करते समय कष्टों की धारणा नहीं होती, किन्तु वे आते हैं तब जिनमें तितिक्षा का अभ्यास नहीं होता, उनका जीवन ही नष्ट हो जाता है।

जीवन में सहिष्णुता का विकास अत्यन्त आवश्यक है। तितिक्षा का इतना विकास होना चाहिए कि व्यक्ति आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को झेल सके और उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। ऐसी स्थिति में विश्व की कोई शक्ति मन को विचलित नहीं कर सकती। जिस व्यक्ति ने सहिष्णुता का अभ्यास कर लिया, सहिष्णुता साध ली, उस व्यक्ति के मन को भगवान् भी असंतुष्ट नहीं कर सकता। जिसने सहिष्णुता का अभ्यास नहीं किया, उस व्यक्ति के मन को भगवान् भी स्वस्थ नहीं बना सकता। सब कुछ मिल जाने पर भी वह यही कहेगा–अमुक वस्तु नहीं मिली। उसका असंतोष उभर-उभरकर बाहर आता रहेगा। सहिष्णुता का विकास होने पर असंतोष मिट जाता है।

यथार्थ प्रस्तुति

मानसिक स्वास्थ्य की साधना का पांचवां सूत्र है–अपने आपको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथार्थरूप में प्रस्तुत करना । समाज के सन्दर्भ में व्यक्ति अपने-आपको यथार्थरूप में प्रस्तुत करना नहीं चाहता । वह अपने-आपको बड़े के रूप में प्रस्तुत करता है, जिससे कि उसकी प्रतिष्ठा बढ़े और वैवाहिक संबंध सुविधापूर्वक हो सकें। किन्तु जब यथार्थ सामने आता है तब बहुत कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं। तब मनमुटाव होता है लड़ाइयां होती हैं, मानसिक अशांति होती है और वह वर्षों तक बनी रहती है। सुना है, एक व्यक्ति अपनी लड़की के लिए दूसरे गांव में लड़का देखने गया। वहां पहले से ही षड्यंत्र रचा रखा था। एक कमरे से रुपयों के टनकार की आवाज आ रही थी। वह टनकार क्षण भर के लिए भी बन्द नहीं हो रही थी। लड़की वालों ने सोचा, कितना धन है इनके पास ? कितने समय से ये रुपये गिन रहे हैं। विवाह की बात तय हो गयी। ठीक समय पर विवाह हो गया। फिर वास्तविकता का पता चला। दोनों परिवार वाले एक-दूसरे से कट गए। संबंधों में दरारें पड़ गयीं।

सामाजिक संदर्भ में अपने-आपको अथार्थ रूप में प्रस्तुत करना अपने-आपको धोखा देना है, दूसरे को धोखा देना है। इससे न जाने कितनी कठिनाइयां और समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

द्वैध न रहे

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के हर क्षेत्र में यथार्थ को छिपाता है और अयथार्थ को प्रस्तुत करता है। यह द्वैध है। जो सुन्दर नहीं है, वह अपने-आपको सुन्दर दिखाने का भरपूर प्रयत्न करता है। वह सभी उपाय काम में लाता है। जितनी भी प्रसाधन की सामग्री है, वह उपयोग करता है। पर वास्तविकता जब खुलती है तब नग्न सत्य सामने आता है। सामने वाला व्यक्ति भी असंतुष्ट होता है और स्वयं भी असंतुष्ट होता है।

एक व्यक्ति था। वह अनेक बार संपर्क में आता। वह सदा यही कहता–'मैंने जीवन में एक व्रत ले रखा है कि मैं जैसा हूं वैसा ही दीखूं, वैसा ही अपने आपको प्रस्तुत करूं। ऐसा न हो कि मैं हूं तो और कुछ और प्रस्तुत कुछ और ही करूं। अपने व्यक्तित्व पर ऐसा परदा डाल दूं कि देखने वाले को वह और किसी रूप में दीखे। यह धोखा है।' जो व्यक्ति सामाजिक संदर्भों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में अपने-आपको यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। वह मानसिक दृष्टि से बहुत स्वस्थ और शक्तिशाली होता है। अयथार्थ रूप में वही व्यक्ति अपने को प्रस्तुत करता है, जो मन से दुर्बल होता है। ऐसा व्यक्ति अपनी कमजोरी का लाभ उठाना चाहता है।

सहिष्णुता और समता

मानसिक स्वास्थ्य के ये कुछेक सूत्र हैं। ये ही समता के सूत्र हैं। जिस व्यक्ति के मन में समता प्रतिष्ठित है, वह कभी अपने को अयथार्थ रूप में प्रस्तुत नहीं करेगा। जिस व्यक्ति के मन में सहिष्णुता का विकास है, वह समता को साध सकेगा। जिसके मन में सहिष्णुता नहीं है, वह समता नहीं साध सकता। वह बालू क्या समता साध पाएगी जो थोड़ी-सी गर्मी में गर्म हो जाती है और ठंड में ठंडी हो जाती है? प्रश्न है कि क्या बालू गर्म है? क्या बालू ठंडी है? उत्तर कुछ भी नहीं दिया जा सकेगा। वह सर्दी के दिनों में ठंडी और गर्मी के दिनों में गर्म होती है। दिन में बालू गर्म होती है और रात में ठंडी। इसका अपना कुछ नहीं है। वैसे ही हवा भी न ठंडी होती है और न गर्म। सर्दी के दिनों में वह ठंडी और गर्मी के दिनों में गर्म हो जाती है। हवा अपने-आपमें ठंडी भी नहीं है और अपने-आपमें गर्म भी नहीं है।

जिस व्यक्ति का मन मूढ़ता से आप्लावित नहीं है, जिस व्यक्ति का मन समता में प्रतिष्ठित है, वह न ठंडा है और न गर्म, वह न राजी है और न नाराज। जिसका मन मूढ़ होता है, वह पहले क्षण में राजी होता है और दूसरे ही क्षण में नाराज हो जाता है। मन के अनुकूल होता है तो वह राजी होता है और प्रतिकूल होने पर तत्काल नाराज हो जाता है। वह मदारी के हाथ का बंदर बन जाता है। जब चाहो तब नचा लो, जैसा चाहो वैसा नचा लो। समता के आने पर यह सब छूट जाता है। नाराजगी और राजीपन का चक्र टूट जाता है।

मन की अनन्त पर्यायें हैं। वह प्रतिपल बदला रहता है। मन के आधार पर किसी एक निश्चित सिद्धांत की स्थापना नहीं की जा सकती। किसी भी एक निश्चय की अनुभूति नहीं की जा सकती। मन अनेक रूप बदलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसको एक निश्चय पर ले जाने का एक ही मार्ग है, वह मार्ग है सहिष्णुता का। सहिष्णुता और समता का पारस्परिक अनुबंध है। सहिष्णुता से समता का विकास होता है। मन अनुकूल और प्रतिकूल–दोनों स्थितियों को समभाव से सह सके, यह है उसको एक निश्चय पर ले जाना।

समता और स्वास्थ्य

सत्य के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है तब समता की साधना विकसित होती है। जो व्यक्ति सत्य के प्रति समर्पित नहीं होता वह सामायिक नहीं कर सकता, समता की साधना नहीं कर सकता। समता और मानसिक स्वास्थ्य अलग-अलग नहीं हैं। समता का ही एक नाम है– स्वास्थ्य। दोनों पार्यायवाची हैं। आयुर्वेद में शरीर के स्वास्थ्य को ही स्वास्थ्य नहीं माना है, मन के स्वास्थ्य को भी स्वास्थ्य माना है। प्रश्न आया कि स्वस्थ कौन है ? इसके उत्तर में कहा गया–

'समाग्निः समदोषश्च, समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

–जिस व्यक्ति के शरीर की धातुएं सम हैं, विषम नहीं हैं, अग्नि सम है, विषम नहीं है, दोष और मल की क्रिया भी सम है, वह व्यक्ति स्वस्थ है। जिसकी इंद्रियां उच्छृंखल नहीं हैं, जिसका इन्द्रियों पर नियंत्रण है, जो प्रसन्न आत्मा है, वह स्वस्थ है। जिसकी शरीर की धातुएं और मल-दोष सम है किन्तु मन की प्रसन्नता नहीं है, निर्मलता नहीं है तो वह व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो सकता। जिसका इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं है वह व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ रहने के लिए शरीर की क्रियाओं का ठीक होना और मन की प्रसन्नता होना– दोनों आवश्यक हैं। मन की प्रसन्नता का अर्थ हर्ष नहीं है। जहां हर्ष है वहां शोक है। जहां शोक है वहां हर्ष है। केवल हर्ष या केवल शोक नहीं होता। यह एक जोड़ा है, द्वन्द्व है। मन की निर्मलता इससे भिन्न वस्तु है। 'निर्मलं गगनं'– आकाश निर्मल है। इसका अर्थ है कि आकाश बादलों से रहित है, निर्मल है। जो आकाश बादलों से व्याप्त है, रेत और धूल से व्याप्त है, वह निर्मल नहीं होता। जो इन सबसे शून्य है, वह निर्मल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। जिसमें हर्ष और शोक–दोनों नहीं हैं, वह है मन की निर्मल अवस्था, मन की प्रसन्न अवस्था। शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य को नहीं तोड़ा जा सकता। मानसिक स्वास्थ्य और समता को भी नहीं तोड़ा जा सकता।

वेश-भूषा

मनोविज्ञान ने मानसिक स्वास्थ्य के परीक्षण की कसौटियां भी दी हैं। 'पर्सनेलिटी पेरामीटर' की पद्धति से व्यक्तित्व को अंकित करने और मानसिक स्वास्थ्य को जांचने के सूत्र दिए हैं, कुछ बिन्दु प्रस्तुत किए हैं। पहला पेरामीटर है–वेश-भूषा। व्यक्ति कैसे कपड़े पहनता है ? वह अपने प्रति कितना सजग है ? वह कपड़ों को किस चतुराई से धारण करता है ? कपड़े पहनने की विधि से मन की प्रसन्नता नापी जा सकती है।

व्यवहार

दूसरा पेरामीटर है–व्यवहार। व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करता है ? कभी संतुलित व्यवहार और कभी असंतुलित व्यवहार करने वाले का मन स्वस्थ नहीं होता। व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है तो उसके प्रति सामने वाला कितना ही दुर्व्यवहार क्यों न करे, वह अपना संतुलन नहीं खोएगा। वह अच्छा व्यवहार ही करेगा। वह अपने अच्छे व्यवहार के द्वारा सामने वाले व्यक्ति के व्यवहार को बदलेगा या उसे यह सोचने के लिए बाध्य करेगा कि यह व्यक्ति सचमुच ही विनम्र और सद्व्यवहार करने वाला है।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन आध्यात्मिक व्यक्ति थे। साधारण से साधारण व्यक्ति भी उनके सामने आता, टोपी उतारकर प्रणाम करता तो स्वयं राष्ट्रपति भी अपना हैट उतारकर उसके अभिवादन को स्वीकार करते। राष्ट्रपति के मित्रों ने यह देखकर कहा–'आप राष्ट्रपति हैं। आपको सामान्य व्यक्ति के आगे हैट नहीं उतारना चाहिए। एक सामान्य नागरिक आपका अभिवादन करता है तो वह उसका कर्तव्य है, उसे करना ही चाहिए। पर आप राष्ट्रपति हैं, आपको अपने स्थान की गरिमा रखनी है।' राष्ट्रपति बोले– 'अमेरिका का राष्ट्रपति विनम्रता और व्यवहार में किसी से छोटा पड़ना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं चाहता। अमेरिका का नागरिक सद्व्यवहार करे और अमेरिका का राष्ट्रपति तुच्छ व्यवहार करे, यह कैसे हो सकता है ? राष्ट्रपति का जो पद है, दायित्व है, उसकी गरिमा है, उसको देखते हुए यह आवश्यक है कि वह अपने विनम्र व्यहार को न छोड़े।'

मानसिक स्वास्थ्य की एक कसौटी है व्यवहार। जो व्यक्ति मन से स्वस्थ होता है, वह अच्छा व्यवहार करने वाले के प्रति अच्छा व्यवहार करता है और उस व्यक्ति के प्रति भी अच्छा व्यवहार करता है, जो प्रतिकूल व्यवहार करता है। अच्छे के प्रति अच्छा और बुरे के प्रति भी अच्छा। वह ऐसा इसलिए करता है कि यदि सामने वाला व्यक्ति मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ है तो क्या वह भी अस्वस्थ हो जाए ? वमन करने वाले को देखकर क्या स्वयं भी वमन करने लग जाएं ? मन की स्वस्थता रखने वाला व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। प्रतिकूल व्यवहार वही व्यक्ति करता है जो मन से दुर्बल है, मन से अस्वस्थ है। जिन व्यक्तियों ने इन सूत्रों का विकास किया– 'शठे शाठ्यं समाचरेत्', ईंट का जवाब पत्थर से'–वे व्यक्ति वास्तव में ही मन से रोगी थे। यदि वे स्वस्थ होते तो इस प्रकार के सूत्रों का प्रतिपादन नहीं होता। आवश्यकता यह है कि सामने वाला व्यक्ति यदि मन से दुर्बल है, अस्वस्थ है तो तुम अपने मानसिक स्वास्थ्य का परिचय दो और उसे यह समझने का अवसर दो कि तुम मन से रुग्ण नहीं हो, मन से स्वस्थ हो।

विचार

मानसिक स्वास्थ्य का तीसरा पेरामीटर है–विचार। मानसिक अशांति का बहुत बड़ा कारण यह है कि व्यक्ति विचार करना नहीं जानता। आदमी सोचने कुछ बैठता है और सोच कुछ और लेता है। आदमी जानता ही नहीं कि कैसे सोचना चाहिए, कैसे चिन्तन करना चाहिए ? मनुष्य का सारा जीवन विचार द्वारा संचालित होता है। सारा जीवन कार्य-कलाप विचार के द्वारा निर्धारित होता है ? किन्तु यह वह नहीं जानता कि कैसे सोचना चाहिए, कैसे चिन्तन करना चाहिए ? सोचते समय मनुष्य के सामने अनेक तर्क प्रस्तुत होते हैं और वह अपने सोचने के मार्ग से भटक जाता है। विचार के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति को परखा जा सकता है। व्यक्ति के विचारों का विश्लेषण करो और तुम यह जान जाओगे कि वह कैसा है। विचार के द्वारा ही व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को जाना जा सकता है। जब मन स्वस्थ होता है, तब व्यक्ति की उपज भी स्वस्थ होती है। वह सही बात को सही ढंग से सोचता है।

स्वस्थ चिन्तन कैसे होता है, इसे हम समझें। आचार्य भिक्षु जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। संयोगवश कोई साधु पास में नहीं था। वे अकेले ही थे। उस मार्ग से एक काफिला निकला। कुछ लोग पास में आए। उन्होंने वंदना कर पूछा–'महाराज! आप कौन हैं? आपका नाम क्या है?' आचार्य भिक्षु ने कहा– 'मैं मुनि हूं। मेरा नाम है भीखण।' लोग एक साथ बोल पड़े–"अरे, भीखण जी! हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। गांव-गांव में आपकी महिमा के गीत गाए जा रहे हैं। हमारे मन में तो आपकी तस्वीर ही दूसरी थी। हमने सोचा था– कितने बड़े संत होंगे, उनके साथ संतों की बड़ी टोली होगी। उनके पास हाथी, घोड़े, नौकर-चाकर आदि होंगे। बड़ा ठाट-बाट होगा। परन्तु आप तो अकेले ही हैं। जमीन पर बैठे हैं। न नौकर, न चाकर, न घोड़ा, न हाथी। सामान्य व्यक्ति की भांति आप बैठे हैं।"

आचार्य भिक्षु के मन पर इस चिन्तन का कोई असर नहीं हुआ, क्योंकि उनका चिन्तन अस्वस्थ होता तो मन-ही-मन दुःखी हो जाते और यह सोचते कि लोगों के मन में मेरी तस्वीर कुछ और है किन्तु मैं कुछ और हूं। यदि जमीन फट जाए तो मैं उसमें समा जाऊं।

आचार्य भिक्षु ने सोचा– 'यदि मेरे पास इतना ठाट-बाट हाथी-घोड़े होते तो भीखण की इतनी महिमा नहीं होती। मैं अकेला हूं इसीलिए यह सारी महिमा होती है। जो व्यक्ति अपने में अकेला होता है और अपने अकेलेपन का अनुभव करता है, वह स्वयं अपनी महिमा का अनुभव करता है और दूसरे भी उसकी महिमा का अनुभव करते हैं।'

यह था आचार्य भिक्षु का स्वस्थ चिन्तन। चिन्तन से व्यक्ति को परखा जा सकता है, व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य का परीक्षण किया जा सकता है।

प्रतिक्रिया विरति

मानसिक स्वास्थ्य का चौथा पेरामीटर है–प्रतिक्रिया। विभिन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थितियों में होने वाली विभिन्न प्रतिक्रियाओं के द्वारा समझा जा सकता है कि व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य कैसा है। कोई व्यक्ति कटु बात कहता है तो उसका उत्तर कटु बात से ही दिया जाए, यह जरूरी नहीं है किन्तु जब ये प्रतिक्रियाएं प्रकट होती हैं, तब यह जान लिया जाता है कि व्यक्ति मन से कितना रुग्ण है। पिता यदि मानसिक दृष्टि से स्वस्थ है तो पुत्र के क्रोधित होने पर भी वह विचलित नहीं होगा। वह कहेगा–'बेटा ! कोई बात नहीं है। धैर्य रखो। शांत होकर इस बात को सोचो।' लोग सोचते हैं–'बेटा गुस्से में है और बाप यदि उससे दुगुना गुस्सा न करे तो वह कैसा बाप !' ऐसा सोचना मानसिक अस्वास्थ्य का लक्षण है। बेटे ने गुस्से में कहा– "पिताजी ! आज से मैं आपसे अलग होता हूं। मैं आपके साथ भोजन नहीं करूंगा।" स्वस्थ मन वाले पिता ने कहा– 'कोई बात नहीं। तुम मेरे साथ भोजन मत करना। मैं तुम्हारे साथ भोजन कर लिया करूंगा। इतने दिन तुम मेरे साथ थे, आज से मैं तुम्हारे साथ रहूंगा।' यह सुनते ही बेटे का क्रोध उतर जाता है और संघर्ष टल जाता है।

स्वभाव

मानसिक स्वास्थ्य को मापने का पांचवा पेरामीटर है–स्वभाव। आदमी का स्वभाव कैसा है ? आदमी आलसी है या कर्मठ ? आशावादी है या निराशावादी ? कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो आशा में भी निराशा ढूंढ निकालते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो निराशा में भी आशा ढूंढ निकालते हैं। आशावादी व्यक्ति नीरस वातावरण में भी आशा और उत्साह भर देता है। आप यह न मानें कि जो व्यक्ति हमेशा आशा और उत्साह की बात करते हैं, वे अयथार्थ की बात करते हैं। वह जीवन का यथार्थ है, जीवन का पलायन नहीं है। वे इस सचाई में एक तथ्य यह जोड़ देना चाहते हैं जिससे कि वह सचाई वास्तविक सचाई या क्रियान्विति की सचाई बन जाए। निराशा में आशा देखने वाले व्यक्ति ऐसे होते हैं।

एक घटना है। आचार्य भिक्षु के समय में हेमराजजी नाम के एक मुनि थे। एक बार वे भिक्षा में दो दालें मिश्रित कर ले आए। एक दाल थी उड़द की और एक दाल थी मूंग की। आचार्य भिक्षु ने कहा–"यह क्या किया ? दो दालें क्यों मिला लाए ?" हेमराजजी ने कहा– "दोनों दाल हैं। मिलाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आपत्ति ही क्या है ? दाल-दाल एक ही होती है।" भिक्षु बोले–"माना कि दोनों दालें हैं। किन्तु रुग्ण मुनि के लिए यह मिश्रित दाल अभोज्य है। उसे केवल मूंग की दाल ही दी जा सकती है।" हेमराजजी ने आवेश में आकर कहा––"जो हो गया सो हो गया।" आचार्य भिक्षु ने उपालंभ दिया। हेमराजजी जाकर सो गए। सब भोजन करने बैठे। आचार्य भिक्षु ने कहा– "हेमराज नहीं आया ?" संतों ने कहा–"वे सो रहे हैं।" आचार्य भिक्षु ने कहा– "हेमराज ! दोष मेरे देख रहा है या अपने ?" यह सुनते ही हेमराजजी आए और आचार्य भिक्षु के चरणों में पड़कर क्षमा याचना करने लगे।

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो आशा में निराशा जगा देते हैं और कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो निराशा में भी आशा के दीप जला देते हैं।

निर्णय की शक्ति

मानसिक स्वास्थ्य को नापने का छठा पेरामीटर है–निर्णय की शक्ति। व्यक्ति ठीक निर्णय लेता है या नहीं लेता ? व्यक्ति तत्काल निर्णय लेता है या नहीं लेता ? चिंतन तो चलता है और निर्णय कुछ भी नहीं लिया जाता– इन सबके आधार पर मन के स्वास्थ्य का पता लगाया जा सकता है।

मनोविज्ञान ने मानसिक स्वास्थ्य के परीक्षण के ये छह पेरामीटर, छह बिन्दु सुझाएं हैं। हमने आध्यात्मिक दृष्टि से समता के बिन्दुओं पर विचार किया और मनोविज्ञान की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य के बिन्दुओं पर विचार किया। इसका निष्कर्ष यह है कि जो व्यक्ति संतुलित जीवन जीता है, समता का जीवन जीता है, सहिष्णुता का जीवन जीता है, मन को आवेशों और दुश्चिंताओं की भट्ठी में नहीं झोंकता, वह व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। समता का बहुत बड़ा परिणाम है मानसिक स्वास्थ्य। जिस व्यक्ति ने समता का मूल्यांकन नहीं किया, उसने अपने मानसिक स्वास्थ्य को कभी भी संजोकर रखने का प्रयत्न नहीं किया। जो व्यक्ति समता का अनुभव करता है, संतुलन का अनुभव करता है, वह व्यक्ति आपने मानसिक स्वास्थ्य को एक बहुत बड़ी धरोहर मानकर उसकी सुरक्षा करता है। समता का होना मानसिक स्वास्थ्य का होना है और मानसिक स्वास्थ्य का होना समता का होना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तित्व का नव-निर्माण और सामायिक

हमारा व्यक्तित्व छह खंडों में विभाजित है । ये छह कर्मशास्त्रीय अवधारणा के आधार पर होते हैं । कर्मशास्त्र के अनुसार मैंने जिन छह खंडों पर व्यक्तित्व को देखने का प्रयत्न किया है, वे छह खंड ये हैं–

१. भौगोलिक व्यक्तित्व
२. आनुवंशिक व्यक्तित्व
३. सामाजिक व्यक्तित्व
४. शारीरिक व्यक्तित्व
५. मानसिक व्यक्तित्व
६. परामानसिक व्यक्तित्व ।

भौगोलिक व्यक्तित्व

सबसे पहला है-- भौगोलिक व्यक्तित्व । हमारा एक व्यक्तित्व होता है, जिसके निर्माण मे भूगोल का बहुत बड़ा अनुदान होता है । एक व्यक्ति भारत में जन्म लेता है । दूसरा व्यक्ति यूरोप में जन्म लेता है । एक व्यक्ति उत्तर में जन्म लेता है । दूसरा व्यक्ति दक्षिण में जन्म लेता है । दोनों में अपनी-अपनी विशेषता होती है । यह विशेषता भौगोलिक है । हम व्यक्ति के वर्ण, रहन-सहन, वस्त्र आदि को देखकर जान लेते हैं कि यह अमुक देश का है, अमुक प्रान्त का है । उसकी क्षेत्रीय विशिष्टता उसके भौगोलिक व्यक्तित्व को उजागर करती है ।

आनुवंशिक व्यक्तित्व

आनुवंशिकता का भी व्यक्तित्व में बहुत बड़ा अवदान होता है । आनुवंशिकता का भी एक पूरा व्यक्तित्व बन जाता है । माता-पिता के गुण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोष संतान में संक्रान्त होते हैं। माता-पिता के अवयव, अवयवों के गुण-दोष संतान में संक्रमित होते हैं। संतान माता-पिता का मिश्रण है। उसमें तीन अवयव माता के और तीन अवयव पिता के होते हैं। मनुष्य मनुष्य जैसा होता है, वह हाथी जैसा नहीं होता। इसका कारण है–आनुवंशिकता। आनुवंशिकता ही यह निश्चित करती है कि मनुष्य मनुष्य के आकार का ही होगा, हाथी के आकार का नहीं। मानव को मानव का आकार मिलता है, मांस पेशियां मिलती हैं, अस्थि-संस्थान, मस्तिष्क आदि आदि मिलते हैं, यह सब आनुवंशिकता के कारण मिलता है। हमारे व्यक्तित्व का एक खंड है–आनुवंशिक व्यक्तित्व।

सामाजिक व्यक्तित्व

व्यक्तित्व का तीसरा खंड है–सामाजिक व्यक्तित्व। समाज के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। वह समाज से परे रहने पर नहीं बनता। एक आदमी दूसरे से बातचीत करता है, स्पष्ट बोलता है। अपनी बात दूसरों को समझाता है और दूसरों की बात स्वयं समझता है, यह विकास समाज के आधार पर ही होता है। यदि समाज न हो तो यह विकास नहीं हो सकता। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ व्यवहार करता है, लेन-देन करता है, यह सारा सामाजिक व्यक्तित्व है। जितनी परस्परता है, वह सामाजिक व्यक्तित्व है। समाज के नियम हैं, समाज की व्यवस्थाएं हैं और समाज की अवधारणाएं हैं। एक व्यक्ति एक प्रकार की वेश भूषा पहनता है और दूसरा दूसरे प्रकार की। यह सामाजिक प्रभाव है। जो व्यक्ति जिस समाज में रहता है वह उसकी अवधारणा के अनुसार वस्त्र पहनता है और यदि वह कुछ भी परिवर्तन करता है तो वह स्वयं एक प्रश्नचिह्न बन जाता है। वेशभूषा, व्यवहार और आचार-विचार–ये सारे हमारे सामाजिक व्यक्तित्व के कारण हैं। यदि व्यक्ति अकेला व्यक्ति होता, यदि उसका समाजिक व्यक्तित्व नहीं होता तो शायद व्यक्ति अपने तक ही सीमित रहता, बहुत विकास नहीं कर पाता। सामाजिकता हमारे व्यक्तित्व का तीसरा महत्वपूर्ण खंड है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक व्यक्तित्व

चौथा खंड है–शारीरिक व्यक्तित्व। शरीर के आधार पर हमारा एक व्यक्तित्व निर्मित होता है। शरीर की अवधारणाओं के आधार पर, शरीर की दीप्ति के अनुसार एक व्यक्तित्व निर्मित होता है। हमारे बहुत सारे कार्य शारीरिक आधारणाओं के आधार पर होते हैं। शरीर की मांग के आधार पर, शरीर की तृप्ति और अतृप्ति के आधार पर अनेक वर्जनाएं और कार्य की अनेक विधाएं चल सकती हैं।

मानसिक व्यक्तित्व

पांचवा खंड है–मानसिक व्यक्तित्व। यह सब व्यक्तियों का भार ढोने वाला है। यह सब व्यक्तित्वों के दायित्वों और प्रतिक्रियाओं का भार ढोता है। परामानसिक व्यक्तित्वों का भार भी यही ढोता है। सभी प्रकार के व्यक्तित्वों के दायित्व का वहन करना, प्रतिक्रियाओं को झेलना, क्रियाओं का उत्सर्जन करना– यह सब मानसिक व्यक्तित्व करता है। यह व्यक्तित्व मन के आधार पर खड़ा है। इसने अनेक मान्यताएं बना रखी हैं। इनमें दोनों प्रकार की मान्यताएं हैं–वर्जना की मान्यताएं और बहुत करने की मान्यताएं। हमने इतनी मान्यताएं खड़ी कर रखी हैं कि पूरा मानसिक व्यक्तित्व हमारे ऊपर छाया हुआ है।

ये पांचों व्यक्तित्व स्पष्ट हैं। इनकी प्रतिष्ठापना के लिए बहुत तर्क अपेक्षित नहीं है। बहुत सरलता से इन्हें समझाया जा सकता है। व्यक्ति पर माता-पिता का, समाज का, शरीर का और मन का प्रभाव होता है। ये ऐसी उजली उजली सफेद बातें हैं कि इनको देखने के लिए दीया जलाने की आवश्यकता नहीं होती। जो स्वयं में स्पष्ट है, उसके लिए प्रकाश आवश्यक नहीं है।

परामानसिक व्यक्तित्व

हमारे व्यक्तित्व का छठा खंड है– परामानसिक व्यक्तित्व। यह छिपा हुआ है, तमस् में है, अंधेरे में है। प्रकट नहीं है। किन्तु यह ऐसा व्यक्तित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। जिसके हाथो में दूसरे पांचों व्यक्तित्वों की नकेल है। वह चाहे तो भौगोलिक, आनुवंशिक, सामाजिक, शारीरिक और मानसिक-सभी प्रभावों को नष्ट कर सकता है। इसके हाथ में है–बनाना और बिगाड़ना, सृष्टि और संहार। प्रलय और निर्माण–सब कुछ इसके हाथ में है। यह भीतर छिपा रहकर इस प्रकार संचालन कर रहा है कि सब इसके इशारे पर नाच रहे हैं।

वर्तमान के वैज्ञानिकों और मानसशास्त्रियों ने बहुत बड़ी क्रान्ति की। उन्होंने कहा– 'चेतन मन के स्तर पर या भौतिक स्तर पर जो कुछ घटित हो रहा है वह अचेतन मन का प्रतिबिम्ब है। यह भौतिक जगत् में बहुत बड़ी घटना है। जो समूचे सिद्धांत को बदल देती है। जहां केवल शरीर या स्थूल मन के आधार पर सारी अवधारणाएं चलती हैं, उस स्थिति में यह प्रतिपादन सामने आया कि व्यक्ति जो स्वप्न लेता है, व्यक्ति के मन में जो वासनाएं उभरती हैं, वे सब दमित वासनाएं स्वप्न में उभरती हैं और जागते में उभरती हैं।

मन के दो स्तर

मन के दो स्तर हैं चेतन मन का स्तर और अवचेतन मन का स्तर। अवचेतन मन का स्तर अत्यंत शक्तिशाली है। चेतन मन अवचेतन मन से कुछ अवदान प्राप्त कर अपना कार्य चलाता है। जितनी घटनाएं घटित होती हैं, हमारे जितने आचरण हैं, उन सबका स्रोत है–अचेतन मन। कर्मशास्त्र ने हजारों वर्षों पूर्व इस विषय का प्रतिपादन किया था कि व्यक्ति जो कुछ करता है उसके पीछे कर्म की प्रेरणा होती है। 'कुम्मुणा जायए'–कर्म से ही होता है। यही प्रेरक तत्त्व है। हमारे सभी आचरणों का मूल स्रोत है कर्म। जो कर्म संचित हैं, जो कर्म अस्तित्व में हैं, सत्ता में हैं और जब वे उदय में आते हैं, जब उनका विपाक होता है तब नाना प्रकार की घटनाएं होती हैं। सारा व्यक्तित्व उनके आधार पर चलता है। कर्मशास्त्र की भाषा में जिसे हम कर्मों का विपाक कहते हैं, उसे ही हम मनोविज्ञान की भाषा में दमित इच्छाओं का उभार कहते हैं। दोनों का आशय तो निकट है ही, भाषा की दूरी भी नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे समूचे व्यक्त्वि के पीछे, व्यक्तित्व में घटित होने वाली घटनाओं के पीछे जो रहस्यमय एक सत्ता छिपी हुई है, वह है सूक्ष्म शरीर या कर्म शरीर की सत्ता या सूक्ष्म शरीरीय चेतना की सत्ता। इसे हम परामानसिक सत्ता कहते हैं। इस तक पहुंचे बिना किसी भी कार्य या घटना की व्याख्या नहीं की जा सकती।

कर्म है परामानसिक

कर्म का सम्बन्ध परामानिसक है। एक व्यक्ति उसी भूखंड में रहता है जहां दूसरे लोग रहते हैं। कुछ लोगों पर भौगोलिकता का असर नहीं होता और कुछ लोगों पर भौगोलिकता का प्रभाव होता है। इसकी व्याख्या कैसे की जाए? यदि हम केवल भौगोलिकता के आधार पर उसकी व्याख्या करें तो पूरी व्याख्या नहीं हो सकती। परामानसिक व्यक्त्वि उसमें परिवर्तन ला देता है। आनुवंशिकता की बात भी ऐसी ही है। यह भी सर्वथा लागू होने वाला सार्वभौम सिद्धांत नहीं है। शारीरिक, सामाजिक और मानसिक व्यक्तित्वों में भी अनेक अपवाद मिलते हैं। उन सब अपवादों को घटित करने वाला परामानसिक व्यक्तित्व व्यक्ति को चलते-चलते बदल देता है। चेतन मन की इच्छा होती है--साधना करूं, ध्यान करूं। किन्तु परामानसिक व्यक्तित्व एक ऐसी प्रक्रिया चालू करता है कि ध्यान कहीं का कहीं रह जाता है, सर्वथा छूट जाता है और व्यक्ति ध्यान की प्रतिकूल अवस्थओं में चला जाता है। मन की इच्छा कुछ होती है और उसके विपरीत ही सब कुछ घटित होने लग जाता है। कोई व्यक्ति सच्चरित्र है, सामाजिक प्रतिबद्धताओं, नियमों और अवधारणाओं को मानकर चलने वाला है किन्तु ऐसा कोई अकल्पित कार्य कर बैठता है कि लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। वे सोचते हैं--ऐसे आदमी ने यह जघन्य अपराध कैसे कर डाला? कितना समझदार, बुद्धिमान् और विवेकी था वह फिर भी यह कार्य कर बैठा। वहां लोगों की समझ काम नहीं करती। तर्क के आधार पर कोई तर्क या हेतु स्पष्ट नहीं दीखता। किन्तु उसके भीतर भी एक सूक्ष्म हेतु है, जो उस कार्य को घटित करता है। वह सूक्ष्म हेतु भीतर काम करता है। हम सामायिक करें, मन की शक्ति के साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समता का उपयोग करें या और कुछ करें, हम इस सचाई को अवश्य समझें कि जब तक अतीत हमारा पीछा करता रहेगा तब तक हम जो चाहते हैं वह जीवन में घटित नहीं कर पाएंगे। अतीत का भूत हमारा पीछा कर रहा है, हम उससे पीछा छुड़ाएं। जब ऐसा होगा तभी हम स्वतंत्र रूप में अपना स्वतंत्र जीवन संचालित कर पाएंगे। वह हमारा पीछा करता रहे, हम उससे न बच पाएं तो हम स्वतंत्र व्यक्तित्व को नहीं पनपा सकेंगे। परतंत्रता का सामना हमें पग-पग पर करना पड़ेगा।

त्याग सावद्य प्रवृत्ति का

सामायिक करने वाला व्यक्ति इस बात से बहुत सावधान और जागरूक रहता है, इसलिए वह कहता है–**"करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चखामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए कायेणं न करेमि न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि !"** भंते मैंने आपका सान्निध्य प्राप्त किया है। मैंने समभाव के साथ तादात्म्य स्थापित करने का संकल्प लिया है। मैंने सावद्य कर्मों और प्रवृत्तियों को त्यागने का संकल्प किया है। मैं कोई भी अकरणीय कर्म नहीं करूंगा, अवांछनीय कर्म नहीं करूंगा। मन से, वचन से और काया से मैं सावद्य कर्म न करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले का ही अनुमोदन करूंगा।'

स्वस्थ संकल्प

बहुत ही स्वस्थ संकल्प है। सान्निध्य भी उपलब्ध है। सब कुछ है। साथ-साथ साधक इस सचाई के प्रति जागरूक भी है कि मेरा यह संकल्प तब ही फलित हो सकता है जब अतीत का पीछा छूट जाए। यदि अतीत का पीछा नहीं छूटता है तो संकल्प नहीं चल सकता। टूट जाता है। इसलिए साधक दोहराता है–**"पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि।"** "भंते ! अतीत में मैंने जो आचरण किए थे, मैं उनका प्रतिक्रमण करता हूं। उस भूमिका से अब मैं नयी भूमिका में लौट आया हूं। मैं जो विषमता की भूमिका में था अब समता की भूमिका में लौट आया हूं। मैं अपने से दूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चला गया था, अपने स्वत्व से दूर चला गया था, अपने घर को छोड़ बाहर चला गया था, अब मैं अपने घर में फिर लौट आया हूं। मैं निन्दा करता हूं। मैंने विषमता का जो आचरण किया था, आज मैं अनुभव करता हूं कि वह निंदनीय और कुत्सित था। मैं गर्हा करता हूं। सारा पाप-कर्म घृणित था। आदरणीय नहीं था।'' 'अप्पाणं वोसिरामि'–''मैं अपने सारे पुराने व्यक्तित्वों का विर्सजन करता हूं। आज से मैं नये व्यक्तित्व का निर्माण करता हूं। व्यक्तित्व का नव-निर्माण करता हूं और जो मैं था उसे छोड़ देता हूं। सामायिक से पूर्व जो मेरा व्यक्तित्व था, उसका विसर्जन करता हूं। आज से मेरा नया जन्म होगा, व्यक्तित्व का नव निर्माण होगा और मैं नये सिरे से जन्म प्राप्त कर अपना जीवन धारण करूंगा।''

द्रष्टा भाव का विकास

यह बहुत बड़ी जागरुकता है। जब तक अतीत का शोधन नहीं होता तब तक हमारा संकल्प चलता नहीं है। व्यक्ति दिन में दस-बीस-बार सोच लेता है कि यह अच्छा नहीं है, मुझे नहीं करना चाहिए किन्तु समय आते ही वही काम हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध न करने की सोचता है किन्तु घटना आते ही गुस्सा तैयार है। व्यक्ति अनेक मनोरथ निर्मित करता है किन्तु जब अवसर आता है तब सारी बातें व्यर्थ हो जाती हैं, विलीन हो जाती हैं। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए होता है कि हम केवल वर्तमान को सुधारना चहते हैं किन्तु अतीत की निर्जरा करना नहीं चाहते। अतीत की निर्जरा किए बिना, अतीत की शक्ति को क्षीण किए बिना केवल वर्तमान को सुधारने की बात व्यर्थ हो जाती है। वर्तमान में रहना बहुत जरूरी है। वर्तमान में रहना तभी संभव है जब अतीत पीछा करना छोड़ दे। अतीत को क्षीण करने का एक मात्र उपाय है–द्रष्टाभाव का विकास। जिस व्यक्ति ने अपने द्रष्टाभाव को विकसित कर लिया, उसने अतीत से अपना पिंड छुड़ा लिया। जिसने द्रष्टाभाव का विकास नहीं किया, उसे अतीत भूत की भांति सताता रहता है। जब वह ध्यान करने बैठता है तब हजारों प्रकार की वासनाएं उभर आती हैं। व्यक्ति निराश हो जाता है, सोचता है– ध्यान मेरे वश की बात नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। ध्यान मन की शांति के लिए करता हूं किन्तु ध्यान करने के लिए बैठते ही मन अशांत हो जाता है। वह निराश व्यक्ति ध्यान को छोड़ देता है। जब तक द्रष्टाभाव का विकास नहीं होता तब तक स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास से द्रष्टाभाव विकसित होता है। हमारी चेतना की ऐसी अवस्था निर्मित हो जाती है कि जो कुछ घटित होता है, वह देखा जाता है, प्रतिक्रिया नहीं होती। साधक मात्र द्रष्टा रहे, प्रतिक्रिया न करे। द्रष्टाभाव का विकास होते ही प्रतिक्रियाएं पीछे रह जाती हैं।

विचारों को न रोकें

अतीत का रेचन करने के लिए दो आलबन अपेक्षित हैं– कायोत्सर्ग और प्रेक्षा। जब साधक को यह लगे कि अतीत सता रहा है, मन को झकझोर रहा है, वासनाएं उभर रही हैं, आकांक्षाएं बढ़ रही हैं, लोभ बढ़ रहा है, तृष्णा बढ़ रही है–तब साधक कायोत्सर्ग करे। जो भी विचार आए, उसे देखता रहे। विचारों को रोके नहीं। उन्हें आने का मुक्त अवकाश दे। द्रष्टाभाव से देखता जाए। जो आता है वह अपने-आप चला जाएगा। जब साधक द्रष्टाभाव में रहता है तब अतीत कुछ बिगाड़ नहीं सकता। कर्मों का, संस्कारों का उभार होता है, उनका उदय होता है और साधक द्रष्टाभाव से सब कुछ देखता जाता है। वे विपाक होते हैं और मिट जाते हैं। उनका आना-जाना चालू रहता है और साधक का देखना चालू रहता है। यही प्रेक्षाध्यान की पद्धति है।

आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र लिखा। उसमें बारह प्रकरण हैं। प्रथम ग्यारह प्रकरणों में उन्होंने परंपरागत ध्यान की पद्धति का प्रतिपादन किया और बारहवें प्रकरण में अपने अनुभूत तथ्यों का उल्लेख किया। उन्होंने लिखा– 'मैं जो कुछ इस प्रकरण में लिख रहा हूं, वह किसी शास्त्र के आधार पर नहीं लिख रहा हूं, किसी परंपरा के आधार पर नहीं लिख रहा हूं, किन्तु मेरा अपना जो अनुभव है वह मैं यहां प्रकट कर रहा हूं।' अपने अनुभवों के प्रकटीकरण में उन्होंने बताया कि जो विचार आते हैं, उन्हें रोको मत। विचारों को रोकने से वे भीतर दब जाते हैं। ये विचार आज की मनोविज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की भाषा में इस प्रकार हैं–'इच्छाओं का दमन मत करो। इच्छाओं का दमन करोगे तो वे और गहरे में चली जाएंगी और फिर भयंकर रूप धारण कर सताएंगी।'

नियंत्रण नहीं, परिष्कार करें

आचार्य कहते हैं–'विचारों को रोको मत, दबाओ मत।' प्रश्न हो सकता है– क्या बुरे विचारों को भी आने दें ? धार्मिक लोग भला बुरे विचारों को कैसे आने देंगे ? वे कहेंगे– 'बुरे विचारों पर नियंत्रण लगाना चाहिए। उन्हें रोकना चाहिए।' आज के धार्मिक स्वयं के विचारों के प्रति इतने जागरूक नहीं होते, जितने जागरूक वे दूसरों के बुरे कर्मों के प्रति रहते हैं। वे दूसरों को बुरे कर्मों से बचाने के लिए अनेक प्रकार का नियन्त्रण रखते हैं, अनेक नियम-उपनियम बनाते हैं। ऐसा लगता है कि मानो धर्म नियंत्रण के आधार पर चल रहा है। नियंत्रण से परिष्कार नहीं आता। यह परिष्कार या निर्जरा की पद्धति नहीं है। यह तो एक ऐसी पद्धति है, जिससे रोग दब जाता है, मिटता नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति दोषों को बाहर निकाल कर स्वास्थ्य प्रदान करती है। दोषों का दबाती नहीं।

आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति पंचकर्म के द्वारा दोषों को समाप्त कर शरीर को स्वस्थ बनाती है।

ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति दोषों को दबाती है। जब दोष दब जाते हैं तब व्यक्ति में स्वस्थ होने का भ्रम पैदा होता है। कालान्तर में वे दोष उभरते हैं और व्यक्ति को दबोच लेते हैं

खतरनाक है दबाने की प्रक्रिया

नियंत्रण से बुराई को मिटाने की तुलना ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति से की जा सकती है। इसमें बुराई मिटती नहीं, उपशांत होती है। जो उपशांत होती है, वह उभरती है। जो मिट जाती है, उसके उभार का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मोह कर्म का उपशमन करने वाला वीतराग की स्थिति तक चला जा सकता है। उसका वीतराग व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है। किन्तु उस साधक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने मोह के अणुओं को दबाया है, उपशांत किया है। उसने कषायों का उपशमन किया है। वे आत्मा में दबे पड़े हैं। उनका अस्तित्व बना हुआ है। निमित्त मिलते ही वे उछलते है और वीतराग व्यक्ति पुनः अवीतराग बन जाता है, नीचे चला जाता है, गिर जाता है। वह लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता।

उपशमन की प्रक्रिया, दबाने की प्रक्रिया, भीतर रहने देने की प्रक्रिया बहुत ही खतरनाक होती है। बहुत सारे अधिकारी लोग प्रतिकूल घटना को दबाने में अधिक विश्वास करते हैं। वे भूल जाते हैं कि दबी हुई घटना भयंकर रूप धारण करती है। उससे अपराध भी भयंकर होता है।

साधक दबाए नहीं, परिष्कार करे, निर्जरा करे। विचार चाहे अच्छा हो या बुरा, उसे दबाए नहीं, खुलकर आने दे। साधक केवल मन का कायोत्सर्ग करे, वचन और शरीर का कायोत्सर्ग करे। साधक जागरूकता से बहुत कुछ देखता रहे। जैसे श्वास और शरीर की प्रेक्षा करते हैं, चैतन्य केन्द्रों और कर्म-विपाकों की प्रेक्षा करते हैं, वैसे ही विचारों की प्रेक्षा करें। विचारों को तटस्थभाव से देखते चले जाएं। विचार अपने आप विसर्जित हो जाएंगे। जब तक उनका रेचन नहीं होगा तब तक वे सताते रहेंगे।

प्राणायाम में तीन बातें की जाती हैं– रेचक, पूरक और कुंभक। हमारे व्यक्तित्व मे दो बातें प्राप्त होती हैं–रेचक और पूरक, छोड़ना और लेना। किन्तु वास्तव में लेने की बात गौण है क्योंकि हम मानते हैं कि आत्मा पूर्ण है।

आत्मा को कुछ भी लेना नहीं है। उपादेय कुछ भी नहीं है वहां केवल रेचक की बात प्रधान है। हमारी पूर्णता इसलिए प्रकट नहीं होती कि हम रेचन करना नहीं जानते। हमारे संकल्प, हमारी कामनाएं और भावनाएं, हमारे मनोरथ इसीलिए अधूरे रह जाते हैं कि हम रेचन करना नहीं जानते।

रेचन की प्रक्रिया

सामायिक के साथ रेचन की बात आवश्यक अंग के रूप में जुड़ी हुई है। **'तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि'** यह रेचन की प्रक्रिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक साधक रेचन करना सीखे। अच्छे विचार आने पर खुश न हो और बुरे विचार आने पर निराश न हो। जो होता है, उसे होने दे। जब नये लोग ध्यान का अभ्यास करते हैं तब बुरे विचार आते ही घबरा जाते हैं। वे कहते हैं—आज बहुत बुरा हुआ। मैं कहता हूं—बहुत अच्छा हुआ कि उतनी गंदगी बाहर निकल गयी। ध्यान का अर्थ है--गहराई में जाना। जब व्यक्ति गहराई में उतरता है तब एक के बाद एक परत उघड़ती है और दबे हुए सारे संस्कार उदित होने लगते हैं।

दो प्रकार के ज्वर होते हैं—हाडज्वर और सामान्य ज्वर। जब ज्वर हड्डीगत हो जाता है तब लगता है कि कोई ज्वर नहीं है किन्तु वह ज्वर बहुत ही खतरनाक होता है। जिस ज्वर के लक्षण प्रत्यक्ष दीखते हैं, उसकी चिकित्सा की जा सकती है। अस्थि-ज्वर ऐसा नहीं है। वह बाहर नहीं दिखता। भीतर ही भीतर चलता है। विचारों का संस्कारों का, भी यही क्रम है। साधक के द्वारा जब उन संस्कारों को कुरेदा जाता है, उभारा जाता है तब वे आक्रमण करते हैं।

जो साधक ध्यान की गहराई में जाता है वह इस बात से न घबराए कि बुरे संस्कार उभर रहे हैं, बुरे विचार आ रहे हैं। वह इस बात से घबराकर ध्यान छोड़ देता है तो पथच्युत हो जाता है। यदि वह उस स्थिति को संभाल लेता है तो आगे बढ़ जाता है। यह एक ऐसा बिन्दु है, जहां से व्यक्ति नीचे गढ़े में भी गिर सकता है, शिखर पर भी पहुंच सकता है।

सामायिक की साधना करने वाला व्यक्ति समझ लेता है कि जो अतीत का ऋण या देय है, वह प्रकट होगा, सामने अवश्य ही आएगा, किन्तु मुझे घबराना नहीं है। मैं अपने व्यक्तित्व के नव-निर्माण में लगा हुआ हूं और पुराने व्यक्तित्व को विसर्जित करने में प्रयत्नशील हूं। मैंने अनेक मान्यताओं और धारणाओं के आधार पर जिस व्यक्तित्व का निर्माण किया था, उसे आज छोड़ रहा हूं, उसका रेचन कर रहा हूं। व्यक्तित्व के नव-निर्माण के लिए नयी ईंटें, नया चूना और नयी सामग्री मैंने जुटा ली है। अब मैं सामायिक की साधना में निरंतर आगे से आगे बढ़ता जाऊंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक शक्ति और सामायिक

हमारा जीवन दो विपरीत दिशाओं में चल रहा है। एक है शक्ति की दिशा और दूसरी है शक्ति-शून्यता की दिशा। जब शक्ति जागृत नहीं होती है तब अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और जब शक्ति जाग जाती है तब भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शक्ति शून्यता की अवस्था में आने वाली कठिनाइयां एक प्रकार की होती हैं और शक्ति-जागरण की अवस्था में आने वाली कठिनाइयां दूसरे प्रकार की होती हैं। शक्ति का न होना भी एक समस्या है और शक्ति का अधिक होना भी एक समस्या है। इन दोनों समस्याओं से हमे निपटना है।

शक्ति जागरण और द्वंद्व चेतना

शक्ति-जागरण के बाद यदि द्वन्द्वातीत चेतना नहीं होती है, सारी चेतना द्वन्द्व में बद्ध होती है, उस स्थिति में भयंकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। शक्ति जागने के बाद उसे झेलने के लिए द्वन्द्वों से अतीत चेतना आवश्यक होती है। उसके बिना जागी हुई शक्ति से अनर्थ घटित हो सकता है। भूतों को वश में करने वाले जानते हैं कि जब भूत जागते हैं तब बलि की मांग करते हैं। उस समय भूत-साधक घबड़ा जाता है, यदि वह स्थिति को नहीं संभाल पाता है तो जागा हुआ भूत उसे ही लील जाता है। यदि वह साधक भूत की मांग पूरी कर देता है तो वह भूत उसके वश में हो जाता है। यही बात शक्ति-जागरण में घटित होती है। शक्ति-जागरण हो जाने पर जो साधक जागृत शक्ति की मांगें पूरी कर देता है तो वह शक्ति उसके लिए बहुत उपयोगी हो जाती है। यदि वह उसकी मांगें पूरी नहीं कर पाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब वह जागी हुई शक्ति उसी को ग्रसित कर जाती है। साधक के लिए वह शाप बन जाती है। द्वंद्व-चेतना जब तक विद्यमान रहती है तब तक मनुष्य को जो चाहिए, वह उपलब्ध नहीं कर सकता। शक्ति तो बहुत जाग गयी किन्तु यदि साधक द्वंद्व की चेतना में ही है तो वह हर्ष और शोक के झूले से झूलता रहेगा। हर्ष होगा तो भी तीव्र होगा और शोक होगा तो भी तीव्र होगा। शक्ति-जागरण के कारण भिन्नता आएगी किन्तु वह साधक हर्ष और शोक से परे की स्थिति में नहीं पाएगा। वह दोनों के बीच में रहेगा। कभी हर्ष और कभी शोक—इसी घेरे में बंधा रहेगा। वह कभी रुष्ट होगा और कभी तुष्ट। कभी राजी और कभी नाराज। यह स्थिति बराबर बनी रहेगी। उसे एक ओर यह निराशा सताएगी कि मैं इतना शक्तिशाली हो गया फिर भी मैं इतना अशान्त, उद्विग्न और प्रताड़ित हूं, इतनी समस्याओं से घिरा हुआ हूं। यह तथ्य उसे कचोटने लगेगा। कमजोर आदमी तो समझता है कि मैं दुर्बल हूं इसीलिए सतत सताया जा रहा हूं। इतना सोचकर वह संतोष कर लेगा। शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। एक ओर उसे शक्ति का दर्प सताता है दूसरी ओर यह विचार सताता है कि मैं जो चाहता हूं, वह नहीं हो रहा है।

समन्वय का संसार

केवल शक्ति से ही सब कुछ नहीं होता। यह समन्वय का संसार है। किसी एक तत्त्व से कुछ नहीं होता। प्रकृति के सारे तत्त्वों में ऐसा सामंजस्य और संतुलन है कि अनेक मिलते हैं तभी एक घटना घटित होती है। एक से कोई घटना घटित नहीं होती। यह संसार सहयोग और समवाय का संसार है। सब समवेत हों तो एक कार्य बन जाता है। केवल शक्ति से कुछ नहीं होता।

आनन्दमय जीवन के लिए चार तथ्य अपेक्षित होते हैं। जब ये चारों तथ्य समन्वित होते हैं तब पूर्ण जीवन जीया जा सकता है। वह जीवन, जिसमें कोई कमी खलती नहीं, कोई अशांति और बेचैनी रहती नहीं। वे चार तथ्य हैं—ज्ञान, दर्शन, वीतरागता और शक्ति। जब इन चारों का अवतरण एक साथ होता है तब व्यक्ति में पूर्णता आती है। ऐसी स्थिति में न शक्ति-शून्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अनुभव होता है, न अशांति और उद्वेग का अनुभव होता है और न यह अनुभव होता है कि जीवन में कोई खालीपन है। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जीवन सरिता की भांति प्रवहमान है, जिसके दोनों तटबन्ध व्यवस्थित हैं, जिनमें जीवन-धारा निर्बाध गति से प्रवाहित हो रही है। यह सब होता है समन्वित के द्वारा। एक से कुछ नहीं होता। हम एक की ही उपासना न करें। हम केवल शक्ति के, केवल चेतना के या केवल वीतरागता के उपासक न बनें। हम केवल ज्ञान के, केवल दर्शन के, केवल पवित्रता और केवल वीतरागता के उपासक न बनें। हम चारों के उपासक बनें। हम यह मानकर चलें कि वीतरागता होगी तो चेतना का जागरण होगा; चेतना का जागरण होगा तो शक्ति का संवर्धन होगा; शक्ति का जागरण होगा तो वीतराग का जागरण होगा। चारों साथ-साथ जागेंगे। ज्ञान, दर्शन, वीतरागता और शक्ति—ये चारों जागेंगे तब व्यक्तित्व का पूरा विकास होगा। जीवन खिल उठेगा। चारों साथ-साथ नहीं जागेंगे तब तक व्यक्तित्व का पूरा विकास नहीं होगा। एक दिशा में होने वाला विकास कभी इष्ट नहीं होता। जब फैलाव चारों दिशाओं में होता है तब वह इष्ट होता है।

द्वंद्व चेतना और तनाव

शक्ति का बहुत बड़ा महत्व है। हम इसे अस्वीकार नहीं कर सकते। किन्तु यदि केवल शक्ति का ही विकास होता है, द्वन्द्वातीत चेतना का विकास नहीं होता है तो वह शक्ति लाभदायक नहीं होती। वह शक्ति द्वन्द्व को ही बढ़ायेगी, घटायेगी नहीं। द्वन्द्व-चेतना तनाव पैदा करती है। द्वन्द्व-चेतना आवेगों के लिए उर्वर भूमि है, जहां सारे आवेग अंकुरित होते हैं। जितनी उत्तेजनाएं हैं, वे सारी तनाव की स्थिति में पैदा होती हैं। जब व्यक्ति में तनाव नहीं होता तब आवेग नहीं आ सकता, उत्तेजना नहीं आ सकती, वासना का उभार नहीं हो सकता। ये सब तब आते हैं जब तनाव की स्थिति होती है। तनाव इसका जनक है। प्रत्येक संस्कार पहले तनाव पैदा करता है। तनाव पैदा किए बिना कोई भी संस्कार नहीं उभरता।

द्वन्द्व-चेतना तनाव उत्पन्न करती है। जब तनाव होता है तब मानसिक रोग और मानसिक विकार उभरते हैं। उस समय व्यक्ति को यह नहीं लगता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि बहुत बड़ा अनर्थ हो रहा है। अनर्थ जैसा कुछ भी प्रतीत नहीं होता। किन्तु वे धीरे-धीरे संचित होते जाते हैं और एक बिन्दु ऐसा आता है कि वह मानसिक विकार मानसिक पागलपन के रूप में बदल जाता है। वर्तमान जगत् में मानसिक विकारों और मानसिक उन्मादों की जितनी भयंकर स्थिति है, संभवतः अतीत में वैसी नहीं रही होगी। आज मानसिक विकारों और मानसिक पागलपन को बढ़ाने के लिए बहुत अवकाश है, सुविधाएं हैं। ऐसी स्थिति है कि आदमी का पागलपन बहुत बढ़ सकता है, मानसिक विकार बहुत बढ़ सकते हैं। इसके लिए वातावरण अनुकूल है। आज मानसिक विकार इतने बढ गए हैं कि उनका समाधान नहीं हो रहा है। उनकी चिकित्सा असंभव-सी प्रतीत हो रही है।

आज की साइको-सोमेटिक पद्धति के द्वारा एक बात प्रतिपादित हुई है कि जो बहुत सारी शारीरिक बीमारियां समझी जाती हैं, वे वास्तव में मनोकायिक बीमारियां हैं। वे पहले मन में जन्म लेती हैं और फिर शरीर में अभिव्यक्त होती हैं। उनका मूल कारण शरीर नहीं है। उनका मूल कारण है मन। इस खोज के पश्चात् यह समस्या और अधिक गंभीर हो गयी कि हर बीमारी के मूल में मानसिक विकृति की खोज होनी चाहिए।

ज्वलंत प्रश्न

इस स्थिति में एक ज्वलंत प्रश्न है कि इतने मानसिक रोग हैं तो उनका उपचार कैसे किया जाए ? बहुत बड़ा प्रश्न है। मनोचिकित्सक मानसिक रोगों का उपचार कर रहे हैं। उनके सामने अनेक पद्धतियां हैं। बिजली के झटके देकर तनाव की चिकित्सा करते हैं। लगातार निद्रा दिलाते हैं। ऐसी दवा इंजेक्ट करते हैं, जिससे रोगी चौबीस घंटे तक निद्रा में रहे। अर्द्ध निद्रा भी दिलाते हैं। कुछ ऐसी दवाइयां देते हैं जिससे रोगी आधी नींद में रहता है। मस्तिष्क में करंट का निरंतर प्रयोग किया जाता है। तनाव-विसर्जन में ये उपाय उपयोगी माने जाते हैं। इस प्रकार चिकित्सा की अनेक पद्धतियां हैं। उन सारी पद्धतियों से दो बातें स्पष्ट होती हैं कि रोग-निवारण के लिए औषधि का प्रयोग होता है या विद्युत् का प्रयोग होता है। सबका प्रयोजन है मस्तिष्क को आराम देना, विचारों और विकल्पों की उधेड़बुन को समाप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना। जो विचार निरंतर उभर रहे हैं उनका शमन करना, नींद लाना, बेहोशी लाना–ये सब स्मृति को खोने के लिए किए जाते हैं। क्या इनके दुष्परिणाम नहीं होते? आज का चिकित्सक यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि आज जो औषधियां दी जाती हैं, वे प्रतिक्रिया पैदा करती हैं, शरीर में क्षति पैदा करती हैं अनेक मानसिक समस्याएं पैदा करती हैं। ये चिकित्सा-पद्धतियां पूर्ण निर्दोष नहीं हैं। चिकित्सा हो पर प्रतिक्रिया पैदा न हो, ऐसा इन चिकित्सा-पद्धतियों में नहीं है।

मानसिक तनाव और प्रेक्षा

इस मानसिक तनाव की स्थिति में हम प्रेक्षा-ध्यान प्रणाली पर विचार करें। जो कार्य औषधियों और विद्युत से संपन्न होता है क्या वह कार्य-प्रेक्षा-ध्यान से संभव है? इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में दिया जा सकता है। प्रेक्षा-ध्यान के अन्तर्गत हम जो छोटे-छोटे प्रयोग करते हैं, वे इस संदर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। जो काम औषधियां नही कर पातीं वह काम ध्यान के ये छोटे-छोटे अभ्यास कर देते हैं। प्रश्न है मस्तिष्क को विश्राम देने का। प्रश्न है विचारों की उधेड़बुन को समाप्त करना। कायोत्सर्ग से जितना विश्राम मस्तिष्क को मिलता है, स्नायु-संस्थान को मिलता है उतना विश्राम किसी दूसरी प्रणाली से नहीं मिलता। न औषधियां और न विद्युत ही उतना आराम दे पाते हैं। इनकी अपेक्षा ही नहीं होती। विचारों की उधेड़बुन भी ध्यान से समाप्त हो जाती है।

प्रेक्षा-ध्यान में शरीर और श्वास की प्रेक्षा की जाती है। जब मन शरीर की प्रेक्षा में लग जाता है तब बाहरी विकल्प समाप्त हो जाते हैं। यदि हम दिन में आधा घंटा भी विकल्पशून्य रह सकते हैं, विचारों की उधेड़बुन से छुट्टी पा सकते हैं तो समूचे दिन की क्रिया संपन्न हो जाती है, फिर और कुछ करने की जरूरत ही नहीं होती। प्रेक्षा से बड़ी-बड़ी उपलब्धियां भी संभव हो सकती हैं।

निदर्शन भरत का

भरत चक्रवर्ती ने प्रेक्षा के द्वारा बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त की। एक दिन वे स्नानगृह में गए। स्नान से निवृत्त होकर वस्त्र धारण कर बाहर आए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने आदर्शगृह (कांचघर) में गए। आदर्शगृह वह होता है जिसमें सब कुछ प्रतिबिंम्बित हो सकता है। वहां जाकर वे बैठ गए। चारों ओर उनके प्रतिबिम्ब दीखने लगे। एक प्रतिबिम्ब पर उनका ध्यान अटका। वे उसे अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। अनिमेष प्रेक्षा प्रारंभ हो गयी। भरत अपने ही प्रतिबिम्ब में खो गए। स्थूल शरीर की प्रेक्षा करते-करते वे सूक्ष्म शरीर की प्रेक्षा करने लगे। सबसे ज्यादा सूक्ष्म शरीर है–कर्म-शरीर। वे कर्मों के विपाक की प्रेक्षा करने लगे। वहां घटित होने वाली सूक्ष्मतम अवस्थाओं को देखने लगे। असंख्य और अनन्त अवस्थाएं। सारे पर्याय सामने आने लगे। सारा नया ही नया। नया संसार दृष्टिगोचर होने लगा। अनिमेष दृष्टि। आंखें प्रतिबिम्ब पर टिकी हुई हैं और वे सूक्ष्मतम पर्यायों का अवलोकन कर रही हैं। शरीर की प्रेक्षा करते-करते शुभ परिणाम आए। शुभ अध्यवसाय और लेश्या बढ़ती गयी। एक बिन्दु ऐसा आया कि समग्र चेतना निरावृत हो गयी। आवरण हट गया। सारे बंधन टूट गए। पूर्ण चेतना प्रकट हो गई। वे केवलज्ञान और केवलदर्शन को उपलब्ध हो गए। भरत चक्रवर्ती समाप्त हो गए। नये धर्म चक्रवर्ती का जन्म हो गया। आदर्शगृह में बैठे-बैठे इस शरीर प्रेक्षा के द्वारा उन्होंने उच्चतम उपलब्धि प्राप्त कर ली।

प्रेक्षा का पहला प्रयोग

परंपरा के अनुसार भरत के इस कथानक में कुछ भेद है। अंगुली के गिर जाने पर भरत चक्रवर्ती अनित्य भावना में आरूढ़ होते हैं और भावना के प्रकर्ष में केवलज्ञानी बन जाते हैं। यह परम्परागत कथानक है। किन्तु जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में 'अत्ताणं पेहेमाणे' का स्पष्ट पाठ है। वे शरीर को देखते-देखते, अपने शरीर की प्रेक्षा करते-करते इतने गहरे चले गए कि अनन्त-अनन्त कर्म-वर्गणा के स्कंधों को चीरकर पूर्ण चेतना, केवल चेतना के साम्राज्य में प्रवेश पा लिया। वहां जाते ही जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हो गया।

शरीर-प्रेक्षा का इतिहास बहुत पुराना है। यह इतिहास उस आदि युग से जुड़ जाता है, जो धर्म का प्रारंभिक युग था। प्रेक्षा-ध्यान की परंपरा नयी नहीं है। हां, वह विस्मृत कर दी गयी थी। उसका आज पुनः उद्धार हो रहा है।

दुनिया में नया कुछ भी नहीं होता। जो बहुत पुराना हो जाता है, उसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का नाम होता है नया। एक बात प्रारंभ होती है। फिर वह विस्मृत हो जाती है। अतीत का अन्तराल बढ़ जाता है। फिर जब वह सामने आता है तब लोग उसे नया कहते हैं।

प्रेक्षा का पहला प्रयोग भरत चक्रवर्ती ने किया था, यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है। इतने युगों तक यह विस्मृत रही। आज फिर चालू हो रही है। यह ध्यान की सरल पद्धति है। जो साधना-पद्धति कठिन होती है, वह कभी मान्य नहीं होती। मनुष्य की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि वह कभी कठोर बात को सहसा स्वीकार नहीं करती। वह सरलतम मार्ग को स्वीकार करती है। प्रेक्षा की पद्धति सरलतम मार्ग है।

तीसरा आयाम

प्रेक्षा-ध्यान से समभाव फलित होता है, द्वंद्वातीत चेतना का उदय होता है। ऐसी तटस्थता, ऐसी समता, ऐसी द्वन्द्वातीत चेतना, जहां चेतना के दोनों आयाम समाप्त हो आते हैं, तीसरा आयाम खुल जाता है—वह समभाव। लाभ-अलाभ, सुख-दुख आदि जितने द्वंद्व हैं, जो हमारे मन को विचलित करते हैं, जो हमारे मन को विकृत और रुग्ण बनाते हैं, वे सारे समाप्त हो जाते हैं।

सचाई यह है कि सारे दुःख द्वंद्व की चेतना से प्रसूत हैं। एक अपना प्रिय पुत्र है। व्यापार करता है किन्तु लाभ नहीं कमा पाता। पिता के मन में ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि पुत्र की प्रियता उस प्रतिक्रिया के नीचे दब जाती है और पिता का मन आक्रोश से भर जाता है। ऐसी कटुता पैदा हो जाती है कि जीवन भर के लिए पिता-पुत्र का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। यह कटुता क्यों ? यह प्रियता का विलोप क्यों ? यह सारा होता है द्वन्द्व-चेतना के द्वारा। इसके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। यदि बेटा धन कमा कर देता है तो पिता उसे सिर पर रख लेते हैं। तीन बेटे हैं। एक खूब धन कमाता है, दो नहीं कमाते। पिता की सारी प्रियता उस कमाऊ बेटे की ओर प्रवाहित होने लग जाती है। दोनों बेटे अप्रिय बन जाते हैं। यहीं से अलगाव का सिलसिला चालू हो जाता है। यह सब द्वंद्वात्मक चेतना से होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्या मुक्ति का सूत्र

द्वन्द्व-चेतना समस्याओं की जननी है। वहां सभी प्रकार की समस्याएं उभरती हैं। उनका कहीं अन्त नहीं आता। जब तक द्वन्द्व-चेतना है तब तक चाहे ज्ञान की शक्ति का उपयोग किया जाए, दर्शन की शक्ति का उपयोग किया जाए, शुद्ध शक्ति का उपयोग किया जाए– ये तीनों एक ओर हैं और एक ओर मूर्च्छा की चेतना, मूर्च्छा की शक्ति है, वे तीनों कार्यकर नहीं होते। उत्पादक केन्द्र है। वह आवेग को उत्पन्न करती है, द्वंद्व को उत्पन्न करती है। इस स्थिति में तीनों के होने पर भी दुःख समाप्त नहीं होता। यदि दुःख को समाप्त करना है, समस्याओं को समाप्त करना है तो द्वन्द्व-चेतना को समाप्त करना होगा।

कोई भी समस्या नहीं चाहता, दुःख नहीं चाहता। यही एक प्रेरणा है द्वन्द्व-चेतना को समाप्त करने की। यहां एक व्याप्ति बनती है। जब तक द्वन्द्व चेतना होगी तब तक दुःख निश्चित ही होंगे। उनका कभी अन्त नहीं होगा। द्वन्द्व-चेतना का होना ही दुःख का होना है और द्वन्द्व-चेतना का नहीं होना ही दुःख का नहीं होना है। समस्याओं और दुःखों से छुट्टी पाने का एक ही उपाय है और वह है द्वन्द्व-चेतना का समापन।

अभौतिकता की चाह

द्वन्द्व-चेतना के समापन का एक और हेतु है। वह यह है कि मानव मस्तिष्क में अभौतिकता की एक चाह निरंतर बनी रहती है। यह मनुष्य की प्रकृति है। मनुष्य की इस प्रकृति का बोध उन लोगों को नहीं होता, जो अभाव से ग्रस्त होते हैं। जिन्हें भौतिक पदार्थ उपलब्ध नहीं होते, उन मनुष्यों को इस सचाई का बोध नहीं होता क्योंकि उनकी सारी ऊर्जा पदार्थों की ओर ही प्रवाहित होती है। किन्तु जो लोग पदार्थों को उपलब्ध हो चुके हैं, जिन्हें भौतिक पदार्थों की कोई चाह नहीं है, उनको यह बोध होता है कि मनुष्य में एक ऐसी अमिट चाह है, जो उन भौतिक पदार्थों से भी परे है। वह जान जाता है कि ऐसी चीज भी है, जो इन पदार्थों से परे है। यदि भौतिक पदार्थों की संपन्नता शिखर पर पहुंच जाए और आदमी पूरा संतुष्ट हो जाए, तब तो कथा समाप्त। कोई खोज की जरूरत ही नहीं। किन्तु शिखर पर पहुंचने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के बाद ऐसा लगता है कि मानो एक नयी तलहटी पर पहुंच गए हैं। दुःखों की नयी तलहटी उनके सामने आ गयी है। तब लगता है, कुछ और होना चाहिए, जो पूर्णता दे सके। ये भौतिक पदार्थ पूर्णता नहीं दे पा रहे हैं। उस स्थिति में द्वन्द्वातीत चेतना की खोज प्रारंभ होती है और मनुष्य सोचता हैं कि द्वन्द्व चेतना के परे भी कोई निर्द्वंद्व चेतना हो, जो मनुष्य को पूर्णता दे सके, अपूर्णता समाप्त कर सके। यह अभौतिकता की चाह जो अन्तर में होती है, उसे समझाने का मौका मिल जाता है।

सिद्धान्त फोटोग्राफी का

प्रत्येक शरीर के चारों ओर एक आभामंडल होता है। आभामंडल निर्जीव वस्तु में भी होता है। एक सिद्धांत है कि प्रत्येक स्थूल पदार्थ से रश्मियां विकीर्ण होती हैं, रश्मियों का उत्सर्जन होता है। यही फोटोग्राफी का सिद्धांत है। मनुष्य के चले जाने पर भी, उस स्थान पर उस मनुष्य का फोटो लिया जा सकता है। वह फोटो इसीलिए लिया जा सकता है कि शरीर के चारों ओर से रश्मियां विकीर्ण होती हैं। आभामंडल को हम देख नहीं पाते, किन्तु उसके देखने की भी एक पद्धति है। आप अंधेरे में बैठ जाएं। कहीं से प्रकाश की रेखा न आए। अपने हाथ को ऊंचा करें। थोड़े समय तक वैसे ही बैठे रहें। आपको हाथ तो दिखाई नहीं देगा किन्तु हाथ के आसपास चारों ओर जो आभामंडल होता है, वह दीखने लग जायेगा। दोनों हाथों को ऊंचा करेंगे तो यह लगेगा कि एक हाथ की रश्मियां दूसरे हाथ में जा रही हैं और दूसरे हाथ की रश्मियां पहले हाथ में आ रही हैं।

एक प्रसिद्ध पद्धति है। दो व्यक्ति दस हाथ की दूरी पर अंधेरे में बैठ जाएं। वे एक दूसरे को दिखायी नहीं देंगे। वे यदि नग्न हों तो उनका आभामण्डल स्पष्टता से दिखाई देने लगेगा। देखते-देखते कुछ समय के पश्चात् एक नीले रंग का आकार सामने दीखने लगता है। जो चीज प्रकाश में दिखाई नहीं देती, वह अंधेरे में दीखने लग जाती है।

निर्द्वन्द्व चेतना है सामायिक

अभौतिक सत्ता की चाह, चेतन तत्त्व की चाह, जिसका हमें भौतिकता की चकाचौंध में, अंधेरे में पता ही नहीं लगता था, किन्तु जब भौतिक पदार्थों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का सेवन करते-करते जीवन में घोर अंधेरा छा जाता है तब पता चलता है कि भीतर एक और भी चाह है, जो इन भौतिक चाहों से बहुत बड़ी चाह है। वह चाह ही इस सचाई को प्रकट करती है कि द्वन्द्व-चेतना से परे भी मनुष्य निर्द्वन्द्व-चेतना को चाहता है। उस द्वन्द्वातीत चेतना का नाम है—सामायिक। सामायिक के घटित होने पर, मन की गति पर अंकुश लग जाता है। मन की गति पर अंकुश होता है तब समस्याएं समाप्त होने लगती हैं। उस स्थिति में समस्यामुक्त, दुःखमुक्त जीवन का अभ्यास प्रारम्भ हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति की श्रेयस् यात्रा और सामायिक

मन की शक्ति का जागरण जीवन की एक महत्त्वपूर्ण यात्रा है। जिसके चरण इस यात्रा में आगे नहीं बढ़ते, वह कुछ भी करने में सक्षम नहीं होता। अक्षम व्यक्ति दरिद्र होगा। उसकी दीनता कभी समाप्त नहीं होगी, वह जीवन-भर दया का पात्र बना रहेगा। इस दुनिया में अच्छा या बुरा जो कुछ हुआ, है वह समर्थ व्यक्ति के द्वारा ही हुआ है। अशक्त व्यक्ति ने कुछ भी नहीं किया। उसने कुछ बुरा भी नहीं किया और कुछ अच्छा भी नहीं किया। शक्ति-संपन्नता जीवन की सफलता का पहला चिह्न है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। केवल शक्तिशाली होना ही पर्याप्त नहीं है। पर्याप्तता के लिए कुछ और होना आवश्यक है। शक्तिशाली व्यक्ति यदि ज्ञानी होता है तो जीवन की पर्याप्तता प्राप्त हो जाती है। जिसमें शक्ति भी है; ज्ञान भी है वह पुरुष शक्ति-संपन्न भी है और ज्ञान संपन्न भी है। व्यक्ति शक्तिशाली है और अज्ञानी है तो शक्ति का दुरुपयोग होगा, शक्ति की अश्रेयस् यात्रा शुरू हो जाएगी। शक्तिशाली पुरुष यदि ज्ञानी होता है तो जीवन की यात्रा श्रेयोन्मुख हो जाती है। जब शक्ति और ज्ञान के सहयोग से श्रेयस् की यात्रा प्रारंभ होती है तब व्यक्ति की सारी जीवन धारा बदल जाती है।

ज्ञान और शक्ति

एक मनुष्य शक्ति-संपन्न है किन्तु वह ज्ञान-संपन्न नहीं है तो वह दूसरों का उत्पीड़न करेगा। तथ्य यह है कि वह स्वयं का भी उत्पीड़न करेगा। वह दूसरों को अयथार्थ की यात्रा पर ले जाएगा। दूसरो को ही नहीं, वह स्वयं भी अयथार्थ की यात्रा पर चल पड़ेगा। वह अनात्म की ओर बढ़ेगा। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों को ठगेगा। साथ-साथ स्वयं को भी ठगेगा। उसकी सारी यात्रा अश्रेयस् की यात्रा होती है, अकल्याण की यात्रा होती है। किन्तु जब ज्ञान और शक्ति–दोनों एक साथ घटित होते हैं तब व्यक्ति का सारा पुरुषार्थ, सारा पराक्रम श्रेयस् में लग जाता है। उसकी समूची यात्रा श्रेयस् की, कल्याण की ओर होती है। वह स्वयं को जानने का प्रयत्न करता है, स्वयं को पाने का प्रयत्न करता है और जब व्यक्ति स्वयं को जानने और पाने का प्रयत्न करता है तब वह दूसरों के लिए अहितकर, अकल्याण कर या अश्रेयस्कर हो नहीं सकता। हजार प्रयत्न करने पर या हजार परिस्थितियों के आने पर भी वह अनिष्ट, अहित या अश्रेयस् नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अपने-आपको देखना या जानना प्रारम्भ कर लेता है, उसे इतनी बड़ी सचाई उपलब्ध हो जाती है, मूर्च्छा के सारे वलय इस प्रकार टूट जाते हैं कि वह फिर मूर्च्छा के चक्रवात में नहीं फंसता। वह मूर्च्छा से चालित नहीं होता, आज तक वह उस बिन्दु से प्रेरित होता रहा है जिसकी आदि नहीं खोजी जा सकती है। वह उस मूर्च्छा के थपेड़ों से प्रताड़ित होता रहा है, जिससे छूटने का प्रयत्न करने पर भी नहीं छूट पाया है। किन्तु जब स्वयं को जानने-देखने की अभीप्सा तीव्र होती है तब ऐसा बिन्दु आता है कि मूर्च्छा का वलय टूटने लगता है, मूर्च्छा की तन्द्रा समाप्त होती है और आदमी जाग जाता है। जागरण की अवस्था में कुछ विचित्र-सा घटित होता है।

जागरण का क्षण

एक व्यक्ति में जब जागरण घटित हो गया तब उसने कहा–

बन्धो ! क्रोध ! विधेहि किञ्चिदपरं स्वस्याधिवासास्पदं,
भ्रातर ! मान ! भवानपि प्रचलतु, त्वं देवि ! माये व्रज।
हंहो ! लोभ ! सखे ! यथाभिलषित गच्छ द्रुतं वश्यतां,
नीतः शान्तरसस्य सम्प्रति लसद्वाचा गुरूणामहम् ॥

–'भाई क्रोध ! अब तुम अपना दूसरा ठिकाना खोज लो। इस स्थान में तुम्हें अब अवकाश नहीं है।' क्रोध ने सोचा– 'यह क्या ? यह कैसा पागल है। हम अनन्त काल से साथ रह रहे हैं। आज अचानक मुझे बाहर ढकेल रहा है। यह क्या हो गया ?' साधक ने मान को सम्बोधित कर कहा–'भाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान ! तुम भी चले जाओ। हे देवी माया ! अब तुम्हारा यहां कोई काम नहीं है। तुम भी चली जाओ।' सबने सोचा, शायद साधक पागल हो गया है, अन्यथा वह अपने जीवन-साथियों को चले जाने के लिए क्यों कहता ? हमने कभी यह सोचा भी नहीं था कि इससे बिछुड़ना पड़ेगा। यह हमें इस प्रकार चुनौती देगा, यह हमारे समझ से परे की बात थी। इतने में साधक ने कहा– 'अरे भाई लोभ ! तुम भी अपना स्थान खाली करो। यहां से जहां चाहो वहां चले जाओ।' क्रोध, मान, माया और लोभ– चारों असमंजस में पड़ गए। उन्होंने कहा– 'हम सदा से तुम्हारे साथ रहे हैं। एक क्षण के लिए भी हमने तुम्हारा साथ नहीं छोड़ा। तुम्हारे सुख में भी हम साथ रहे और दुःख में भी हमने तुम्हारा साथ निभाया। आज तुम हमें छोड़ रहे हो, यह अन्याय है।'

साधक ने कहा–'जब मैं सोया था तब तुम जागते थे। जब तक मैं सोता रहा, तुम मेरे में बने रहे। आज मैं जाग गया हूं। मेरी मूर्च्छा टूट गयी है। ऐसी कोई अमृत-वर्षा हो रही है, जिसमें मैं आकण्ठ मग्न हूं। मैं जागूंगा तब तुम नहीं रह पाओगे। मैं सोया रहता हूं तब ही तुम कुछ कर पाते हो। जागने के बाद तुम अकिञ्चित्कर हो जाते हो। मालिक जाग जाता है, तब चोर घर में नहीं रह सकते।'

सामायिक है आत्मिक उन्मेष

जीवन में जब कोई आत्मिक उन्मेष जागता है, आध्यात्मिक घटना घटित होती है तब सारी दिशा बदल जाती है और सारी शक्ति श्रेयस् की दिशा में प्रवाहित होने लग जाती है। यह आत्मिक उन्मेष ही सामायिक है। यह जागना ही सामायिक है। सामायिक, समता, साम्य तब घटित होता है जब स्वानुभव का एक लव भी जागृत हो जाता है। जब तक स्व का अनुभव नहीं होता, आत्मा का अनुभव नहीं होता, आत्मा का उन्मेष नहीं जागता, तब तक जीवन में सामायिक घटित नहीं होता, कुछ भी श्रेयस् घटित नहीं होता।

सामायिक और चैतन्य का अनुभव–दोनों साथ में जुड़े हुए हैं। जितना-जितना चैतन्य का अनुभव उतना-उतना सामायिक। ऐसे भी कहा जा सकता है–जितना-जितना सामायिक, उतना-उतना चैतन्य का अनुभव, स्व का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभव या आत्मा का अनुभव। परानुभव और स्वानुभव– ये दो विरोधी दिशाएं हैं। ये कभी मिलने वाली नहीं हैं। परानुभव भी चलता रहे और स्वानुभव भी होता रहे, यह कभी संभव नहीं है। दो समान्तर रेखाएं हैं परानुभव और सामायिक साथ-साथ भले ही चले, पर वे परस्पर कभी नहीं मिल सकते।

स्थायी कैसे बनें

जब आत्मा का अनुभव जागता है तब व्यक्ति कहता है–"करेमि भंते! सामाइयं–भगवन् मैं सामायिक करता हूं।" सामायिक करने की भावना तब जागती है जब स्वानुभव का उन्मेष होता है। सामायिक के लिए यह बहुत ही जरूरी है कि उसे सान्निध्य मिले।

उन्मेष और निमेष–दोनों का क्रम सतत चलता रहता है। तरंगें उठती हैं, तरंगें गिरती हैं। तरंगों का उन्मेष होता है, तरंगों का निमेष होता है। पलकें खुलती हैं, पलकें गिरती हैं। पलकों का उन्मेष होता है, पलकों का निमेष होता है। यह उन्मेष और निमेष का चक्र चलता रहता है।

आत्मिक उन्मेष जगा, किन्तु वह स्थायी कैसे हो, यह महत्त्वपूर्ण बात है। जो ज्योति जली, वह अखंड ज्योति कैसे बने, शाश्वत ज्योति कैसे बने, उसमें निमेष आए ही नहीं, सदा उन्मेष ही रहे, यह कैसे संभव हो सकता है? इसके लिए सान्निध्य की जरूरत है। इसके लिए मन की शक्तियों का प्रयोग और संकल्प शक्ति जरूरी है।

सान्निध्य की चाह

सबसे पहली बात है सान्निध्य की। कोई व्यक्ति समता की यात्रा प्रारंभ करता है, यह अनजानी यात्रा है, अज्ञात यात्रा है। यह वह मार्ग है, जिस पर वह पहले कभी चला नहीं है। यह वह दिशा है, जिस दिशा में पैर कभी आगे नहीं बढ़े हैं। सारा अज्ञात ही अज्ञात। अज्ञात मार्ग में, अज्ञात दिशा में सहारा अपेक्षित होता है अन्यथा व्यक्ति भटक जाता है। जहाजों के लिए भी दिशा-निर्देश यंत्र की आवश्यकता होती है, जो दिशा का ठीक निर्देश दे सके। इसी प्रकार इस अज्ञात यात्रा में किसी-न किसी ज्ञापक या गमक साधन की जरूरत होती है। जिससे ठीक दिशा का पता लग सके और सही दिशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में यात्रा हो सके अध्यात्म के इस अनजाने मार्ग पर पादन्यास करने से पूर्व साधक सान्निध्या की याचना करता है। वह कहता है– भगवन्! मैं सामायिक में उपस्थित हो रहा हूं, मैं सामायिक कर रहा हूं, आपकी सन्निधि मुझे प्राप्त हो। मैं आपकी साक्षी से इस मार्ग पर चल पड़ा हूं।"

वह दरिद्र है

वह सामायिक करता है भगवान् की साक्षी से। वह पहले सान्निध्य को अपने में उतारता है। वह उस आत्मा के सान्निध्य को उपलब्ध होता है, जिस आत्मा ने सामायिक के चरम शिखर पर पहुंचकर सामायिक के उत्कर्ष को प्राप्त कर लिया है। ऐसे सान्निध्य को प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं होता, जिसने स्वयं सामायिक का अभ्यास नहीं किया है। ऐसा सान्निध्य और अधिक असामायिक की ओर ले जाएगा। सान्निध्य का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। एक व्यक्ति सामायिक के पथ पर चल रहा है और उसे सान्निध्य मिलता है असामायिक की ओर ले जाने वाले व्यक्ति का, विषमता की ओर ले जाने वाले व्यक्ति का तो रास्ता छूट जाएगा और व्यक्ति भटक जाएगा। वह कहेगा–'कहां जा रहे हो? हिंसा और उत्पीड़न किए बिना रोटी कमाकर कैसे खा सकोगे? क्या बिना पैसे के बाल-बच्चों को पढ़ा पाओगे? क्या रहने के लिए मकान बना पाओगें? क्या आधुनिक सुख-सुविधाओं का उपयोग कर सकोगे। तुम कहां भटक गए? यह सामायिक का रास्ता गलत है।' वह व्यक्ति ऐसा भटकता है, मार्ग-च्युत होता कि सामायिक कहीं रह जाती है, पीछे छूट जाती है और वह पुनः विषम मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।" इसलिए सान्निध्य ऐसा मिले, जो समता की ओर बढ़ा सके, आगे ले जा सके, जिससे यह सतत प्रेरणा और स्फुरणा मिलती रहे कि जीवन में यदि सामायिक उपलब्ध नहीं हुआ तो कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ। सब कुछ पाकर भी व्यक्ति दरिद्र है, यदि उसे सामायिक प्राप्त नहीं है। वह बेचारा गरीब ही बना रहा, जिसने सामायिक को उपलब्ध नहीं किया और जिसने समता का आस्वादन नहीं किया।

जब हमारे सामने एक परम पवित्र आत्मा विराजमान रहती है, हमारा इष्ट होता है, उस परम आत्मा का सान्निध्य हमारे अन्तःकरण में, हमारी चेतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के कण-कण में विद्यमान होता है, उस समय कोई भी शक्ति हमें समता से विचलित नहीं कर सकती । इसलिए श्रेयस् की यात्रा में सान्निध्य बहुत अपेक्षित होता है ।

तब होती है सामायिक

सन्निधि का अर्थ है–निकटता । जब सामायिक के चरम शिखर को उपलब्ध आत्मा के साथ हमारी एकात्मकता होती है, तब सहज ही हमारे जीवन में सामायिक का अवतरण हो जाता है । उसी क्षण में यह अनुभूति जागती है–'करेमि भंते ! सामाइयं–भगवन् ! मैं सामायिक करता हूं ।' सामायिक जीवन की एक बहुत बड़ी घटना है । यह घटना घटित होती है उस यात्रा में गति होने पर । जब व्यक्ति सभी पापमय प्रवृत्तियों से अपने अस्तित्व को पृथक् अनुभव करता है तब सामायिक घटित होती है । जब तक सावद्य कर्मों के साथ, क्लेश में डालने वाले कर्मों के साथ अपने अस्तित्व को जोड़ता चलता है तब तक सामायिक घटित नहीं होती । सामायिक घटित होती है उस संकलन के द्वारा कि जो कुछ मेरे सामने है वह सारा का सारा भिन्न है । मेरा अस्तित्व इन सबसे भिन्न है । मेरे अस्तित्व के साथ इनका जुड़ना ही दुःख है । जब व्यक्ति अपने अस्तित्व को पृथक् देखना शुरू करता है और अपने अस्तित्व से परे की सारी वस्तुओं को भिन्न देखता है, उस क्षण में जीवन में सामायिक घटित होती है । जितनी भी सावद्य प्रवृत्तियां हैं, राग-द्वेष की प्रवृत्तियां हैं, जिनको हमने अपने अस्तित्व से जोड़ रखा है, अपने अस्तित्व का अंग बना रखा है, जब तक उनके साथ अभिन्नता की दृष्टि बनी रहेगी तब तक सामायिक कभी नहीं घटेगी, उसका अवतरण नहीं होगा । जब यह मिथ्यादृष्टि बदल जाएगी, यह सम्यगदृष्टि आ जाएगी कि ये विजातीय तत्त्व मेरे अंग नहीं हैं, ये सब 'पर' हैं, मेरे स्वत्व पर अधिकार जमाए हुए हैं, मुझे दुःख के चक्र में डाले हुए हैं–यह दृष्टि बनते ही सामायिक घटित होगी । ये विजातीय गुण-धर्म मुझे कष्ट देने वाले, ठगने वाले, दुःख के चक्र में डालने वाले हैं–यह स्पष्ट होते ही, उसी दिन सामायिक के लिए उचित स्थान बन जाएगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन की शक्ति का प्रयोग

हम सामायिक को उपलब्ध करने के लिए मन की शक्तियों का प्रयोग करें। मन की शक्ति का प्रयोग अनावश्यक नहीं है। वह भ्रम नहीं है।

मन की पहली शक्ति है–कल्पना। कल्पना की शक्ति का भी महत्त्व है। कल्पना-शक्ति का उपयोग किए बिना कोई भी आदमी बड़ा काम नहीं कर सकता। ध्यान के अभ्यास-काल में हम बार-बार कहते हैं–"कल्पना मत करो, विकल्प मत करो।" किन्तु काम के समय कल्पना की बहुत अपेक्षा होती है। निर्विकल्प शक्ति के द्वारा कल्पनाशक्ति का विकास होता है। आप यह न मानें कि निर्विकल्प दशा में और कल्पना की मनोदशा में कोई सर्वथा विरोध है। उनमें सर्वथा विरोध नहीं है। ध्यान-काल में कोई विकल्प न करें, कोई कल्पना न करें शक्ति के संवर्धन के लिए। ध्यानमुक्त काल में कल्पना करें। दोनों जरूरी हैं। ध्यान के विकास के लिए कल्पना करना बहुत जरूरी है। ध्यान में बठने से पूर्व कल्पना करनी चाहिए। अर्हत् की कल्पना करें। मन में एक स्वस्थ आकृति का निर्माण करें। जब तक कोई आकृति स्पष्ट नहीं होती तब तक काम आगे नहीं बढ़ सकता। सबसे पहले कल्पना करनी होती है, एक चित्र का निर्माण करना होता है कि यह बनाना चाहता हूं। ध्यान में यह क्षमता है कि वह आपको अपने संकल्प के अनुसार ढाल सकता है। जैसा चाहें वैसा बनें–इसमें ध्यान माध्यम बनता है। एक व्यक्ति चाहता है कि मैं अमुक व्यक्ति को पीड़ित करूं। ऐसी शक्ति भी ध्यान के द्वारा ही प्राप्त होती है, एकाग्रता के द्वारा ही प्राप्त होती है। एकाग्रता के द्वारा शक्ति को अर्जित कर अनेक व्यक्ति दूसरों का उत्पीड़न करते हैं, दूसरों को सताते हैं, लूटते हैं और मार भी डालते हैं। यह शक्ति भी ध्यान के द्वारा प्राप्त होती है। कोई व्यक्ति किसी का भला करना चाहे, अच्छा करना चाहे तो यह शक्ति भी ध्यान के माध्यम से ही प्राप्त होती है। इस प्रकार दोनों प्रकार की शक्तियां ध्यान के माध्यम से ही उपलब्ध होती हैं। इसलिए आत्मविकास करने वाले व्यक्ति का यह पहला कर्त्तव्य है कि जो बनना है, उसका वह चित्र बनाए। जब तक यह नहीं होता, तब तक जो बनना होता है, वह नहीं बना जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छा शक्ति

इसके पश्चात् संकल्पशक्ति का उपयोग करें, इच्छाशक्ति का उपयोग करें। जो हमारी भावना है उसमें प्रबलता लाएं। भावना में प्रबलता का नाम ही इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति या दृढ़ निश्चय है। जब इच्छाशक्ति दृढ़ और प्रबल होती है तब 'बनने' की दिशा में गति प्रारंभ हो जाती है। इच्छाशक्ति के द्वारा विचारों में ऐसे प्रकंपन पैदा होते हैं कि हमारा परिणमन प्रारम्भ हो जाता है। न केवल हमारे विचारों में प्रकंपन शुरू होता है किन्तु आकाश-मडंल भी प्रकंपित हो उठता है। वायुमंडल में प्रकंपन होते हैं और वह घटित होने लग जाता है, जो होना है।

हम कभी-कभी सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति ने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया। कैसे किया ?–यह एक प्रश्न है। जिस व्यक्ति के मन में राम या कृष्ण का चित्र स्पष्ट था, उसने राम या कृष्ण का साक्षात् कर लिया। यह साक्षात् उसी रूप में होता है, जिस रूप में व्यक्ति ने महावीर, राम या कृष्ण को देखा है, जाना है, समझा है। जिस व्यक्ति के मन में आचार्य भिक्षु का चित्र स्पष्ट था, उस व्यक्ति ने आचार्य भिक्षु के दर्शन कर लिये। न जाने कितने भक्त कितने भगवानों को देख लेते हैं। वे देखते उसी भगवान् को हैं, जिसका चित्र मन में स्पष्ट होता है। दूसरे भगवानों को नहीं देखा जा सकता। इसका तात्पर्य यही है कि पहले हमने एक चित्र बनाया। फिर कल्पनाशक्ति या संकल्पशक्ति के द्वारा वायुमंडल को इतना आन्दोलित कर दिया, इतनी तरंगें पैदा कर दीं कि सारा वायुमंडल प्रकंपित हो उठा और उसमें से जो हमारा इष्ट था, उसकी आकृति हमारे सामने स्पष्ट हो गयी। यही हमारा साक्षात्कार है।

एकाग्रता

तीसरी शक्ति है–एकाग्रता। उसका भी उपयोग करें। हम जो होना चाहते हैं, उसी की ओर मन की सारी शक्ति को प्रवाहित कर दें। भटकाव को मिटा दें। मन की शक्ति जब इधर-उधर दौड़ती है, एक लक्ष्य की ओर प्रवाहित नहीं होती है तो सफलता नहीं मिल सकती। मन की ऊर्जा जब एक दिशागामी होती है तब हम जो बनना चाहते हैं, वह बन जाते हैं। 'एगायणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयस्स'–जो एक ही आयतन में रत होता है, जो एक ही आयतन में देखता है, वह उस आयतन तक पहुंच जाता है, कभी नहीं भटकता। हम सीधी दिशा में चलें, परिक्रमा न करें। परिक्रमा करने वाला उस निश्चित वर्तुल में ही घूमता रहता है, आगे नहीं बढ़ पाता। आगे वह बढ़ता है, जो एक ही दिशा में चलता रहता है। साधक परिक्रमा न करे, सीधा उस चित्र की दिशा में बढ़ता जाए। मन की सारी ऊर्जा को एक दिशा में प्रवाहित करना सफलता का चिह्न है। जब तीनों शक्तियों–कल्पनाशक्ति, संकल्पशक्ति और एकाग्रता की शक्ति–का उपयोग सम्यक् होने लगता है, उस समय हम तन्मय होकर ध्यान की स्थिति में चले जाते हैं।

ध्येय है सामायिक

हमारा ध्येय है सामायिक। हम हैं ध्याता। ध्याता और ध्येय के बीच बहुत दूरी होती है। आप पूछेंगे–कितनी दूरी ? इसका कुछ निश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता। किन्तु उसके लिए एक सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है कि जितनी व्यग्रता उतनी ही दूरी। जितनी एकाग्रता उतनी ही दूरी की कमी। मन की व्यग्रता दूरी को बढ़ाती है। मन की एकाग्रता दूरी को कम करती है।

मन की दो भूमिकाएं हैं। एक है व्यग्रता की भूमिका और दूसरी है एकाग्रता की भूमिका। व्यग्र मन अर्थात् एक अग्र–आलंबन पर न टिकने वाला मन, नाना अग्रों–आलंबनों पर भटकने वाला मन। उसका भटकाव कभी नहीं मिटता। एकाग्रता अर्थात् एक ही अग्र पर टिकने वाला मन। इसमें भटकाव मिट जाता है।

जितनी व्यग्रता होती है, उतनी ही दूरी बनी रहती है। व्यक्ति ध्येय के निकट नहीं पहुंच पाता। ध्येय तक पहुंचने के लिए व्यग्रता को कम करना होगा।

ज्ञान की दो अवस्थाएं हैं–ज्ञान और ध्यान। दोनों ज्ञान हैं। जो चेतना चंचल है, उसका नाम है ज्ञान और जो चेतना स्थिर है, उसका नाम है ध्यान। ध्यान ज्ञान है, परन्तु हर ज्ञान ध्यान नहीं है। प्रत्येक ध्यान ज्ञान है। ऐसा कोई भी ध्यान नहीं है, जो ज्ञान न हो, अज्ञान हो। किन्तु प्रत्येक ज्ञान ध्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। वही ज्ञान ध्यान है, जो एकाग्र है, एक आलंबन पर चलने वाला है।

दूरी कैसे मिटे ?

ध्याता और ध्येय में बहुत बड़ी दूरी है। उसे पाटना बहुत कठिन होता है। जब साधक इस दूरी को पाटने का प्रयत्न करता है तब बीच में अनेक अवरोध आ जाते हैं। ध्यान भंग हो जाता है। एकाग्रता मिट जाती है। मन बाहर की चीजों में उलझ जाता है। ध्येय धुंधला हो जाता है, छूट जाता है। जब ध्येय की दिशा में गमन ही नहीं होता या भटकाव हो जाता है तब ध्येय उपलब्ध कैसे हो सकता है ? जब चरण ध्येय की दिशा में बढ़ते ही नहीं, तब वहां तक पहुंचने की बात ही प्राप्त नहीं होती। ध्येय की दूरी तभी मिट सकती है जब हमारे मन की गति निरंतर ध्येय की दिशा में होती है। जब मन व्यग्रता से शून्य हो जाता है तब ध्येय की निकटता होने लगती है। जब निकटता बढ़ते-बढ़ते हमारे चरण ध्येय तक पहुंच जाते हैं तब मन की जो स्थिति बनती है, वह है तन्मयता। तन्मय हो जाने का अर्थ है—एक हो जाना। ध्येय और ध्याता तब दो नहीं रहते, एक हो जाते हैं। जो पूर्व रूप था, वह मिट जाता है और जो ध्येय का रूप है, वह अवतरित हो जाता है। पूर्व व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है और ध्येय का व्यक्तित्व समाविष्ट हो जाता है। वहां 'मैं' समाप्त हो जाता है। जो बनना होता है, वह घटित हो जाता है। साधक उस स्थिति में चला जाता है, जहां ध्याता और ध्येय दो नहीं रहते। ध्याता स्वयं ध्येय रूप बन जाता है। फिर व्यक्ति अलग नहीं होता और सामायिक अलग नहीं होती। व्यक्ति स्वयं सामायिक बन जाता है। फिर वह ऐसा नहीं कह सकता कि 'मैं सामायिक कर रहा हूं !' कौन करने वाला और कौन सामायिक ? 'मैं सामायिक करता हूं'—इसका तात्पर्य है कि एक करने वाला है और एक की जाने वाली वस्तु है। जब यह भेद समाप्त हो जाता है तब 'मैं' और 'सामायिक' दो नहीं रहते। करने की बात छूट जाती है। सामायिक जीवन में अवतरित हो जाती है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया

समता के ध्येय को उपलब्ध करने के लिए जीवन में सामायिक की घटना घटित होनी आवश्यक होती है। इसकी संपूर्ति के लिए चारों प्रकार की शक्तियों का उपयोग करना होता है–

१. कल्पना शक्ति
२. इच्छा शक्ति
३. एकाग्रता शक्ति
४. तन्मयता की शक्ति

जब ये चारों शक्तियां साधक को उपलब्ध हो जाती हैं, तब जीवन में सामायिक अवतरित होती है। यह केवल सामायिक की ही प्रक्रिया नहीं है। आप जो भी ध्येय बनाएं, जो भी चित्र बनाएं, जिसको उपलब्ध होना चाहते हैं, उसकी यही प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया के द्वारा आप जो चाहें, वह साध सकते हैं, उसे उपलब्ध कर सकते हैं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

ध्येय की दिशा में

हम प्रेक्षा का अभ्यास करते हैं। हमारा ध्येय है–चैतन्य का अनुभव करना। यह ध्येय तो हमने चुन लिया किन्तु प्रेक्षा-ध्यान में हम सबसे पहले चमड़ी को, फिर हड्डियों को, फिर मांस को, फिर मज्जा और रक्त को, फिर और-और चीजों को देखते हैं। शरीर में जितनी गंदगी है, उसको देखना प्रारंभ करते हैं। ध्येय तो है आत्मा के अनुभव का और देखते हैं दूसरी-दूसरी चीजों को। यह विरोधी-सा लगता है किन्तु यह विरोधी बात नहीं है। दिशा का भटकाव नहीं है। सही दिशा में हमारी गति का क्रम है। हमें चैतन्य का अनुभव करना है। चैतन्य क्या आकाश से टपकता है? हम बन्दर तो नहीं हैं, जिसने मगरमच्छ से कहा था कि तुम मेरा कलेजा चाहते हो पर मैं तो अपने कलेजे को साथ लेकर नहीं फिरता। उसे मैं वृक्ष पर टांग आया हूं। आदमी बन्दर नहीं है। वह नहीं कह सकता कि मैं मेरे अध्यात्म को, मैं मेरी सामायिक को कहीं अन्यत्र रखकर आया हूं। आदमी विकसित चेतना वाला प्राणी है। वह बन्दर की तरह अल्प विकसित प्राणी नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक की निष्पत्ति

जो व्यक्ति अपने जीवन में कुछ घटित करना चाहता है, अपने चैतन्य की यात्रा करना चाहता है, वह यह बहाना नहीं कर सकता कि मेरा चैतन्य कहीं वृक्ष पर टंगा हुआ है। सारा का सारा चैतन्य इस शरीर के भीतर अवस्थित है। जब वह शरीर के भीतर है, तब उसे प्राप्त करने के लिए हमें शरीर की यात्रा करनी होगी। इस यात्रा का प्रारंभ हमें चमड़ी से करना होगा। फिर एक-एक आवरण को पार कर हमें नाड़ी-संस्थान तक पहुंचना होगा। फिर हमें तैजस शरीर को पार करना होगा। तैजस शरीर हमारी समस्त प्रवृत्तियों का संचालक है। प्राणशक्ति तैजस शरीर के द्वारा प्राप्त होती है। उसे भी हमें पार करना होगा। जो प्राण हमें जीवनशक्ति दे रहा है, उसके स्पंदनों को पार करने के पश्चात् हमें कर्म शरीर की यात्रा प्रारंभ करनी होगी, जहां से सारी शक्तियां उमड़-उमड़कर आती हैं। ये सब छोटे-मोटे झरने हैं। महाप्रपात तो कर्म-शरीर है। सूक्ष्म कर्म-शरीर के एक-एक अणु पर, अनादिकाल से चिपके हुए संस्कारों को देखना होगा और एक-एक को पार करने का प्रयत्न करना होगा।

सूक्ष्म शरीर का बहुत बड़ा संसार है। वह इतना बड़ा संसार है कि आज के अरबों-खरबों दृश्य संसार इसमें सहजता से समाविष्ट हो सकते हैं। इतना बड़ा संसार दूसरा है नहीं। कुछ तारे ऐसे हैं, जिनमें नील पृथ्वियां समा जाती हैं, किन्तु सूक्ष्म कर्म-शरीर के सामने ये तारे भी छोटे हैं। उस अनन्त संसार को, अनन्त संस्कारों के संसार को हमें पार करना होगा। उसको पार करते ही चैतन्य का अनुभव प्रारम्भ हो जाता है। सामायिक-साधना की यह सहज निष्पत्ति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निःशस्त्रीकरण और सामायिक

शस्त्र और हिंसा को पर्यायवाची माना जा सकता है। जहां-जहां शस्त्र है, वहां-वहां हिंसा है। जहां-जहां अशस्त्र है वहां-वहां अहिंसा है। जब प्रस्तर-युग था तब पाषाण के अस्त्र बने, पत्थर के शस्त्र बने। कभी मिट्टी का ढेला फेंका गया, वह भी एक शस्त्र था। लोह का युग आया, लोहे के शस्त्र बने, तलवारें बनीं। बारूद का युग आया, बन्दूकें बनीं, गोलियां बनीं, तोपें बनीं। क्रमशः शस्त्र का विकास होता चला गया। विकास होते-होते अणुबम और हाइड्रोजन बम का युग आया, अणु-शस्त्र बने, बनते चले जा रहे हैं।

मूल शस्त्र है भाव

इन शस्त्रों का विकास क्रमशः हुआ है पर एक शस्त्र स्थाई है, जो पहले भी था, आज भी है और भविष्य में भी रहेगा। वही शस्त्र इन सब शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। वह कभी बदलता नहीं है, स्थाई है और वह है असंयम। महावीर की भाषा में वह भाव-शस्त्र है। आचारांग सूत्र में षड्जीवनिकाय के लिए नाना प्रकार के शस्त्रों का निरूपण किया गया है। आज एक सामान्य आदमी शस्त्र शब्द कहते ही तलवार, बन्दूक या लाठी पर गौर करेगा, पानी एक शस्त्र है, यह कल्पना वह नहीं कर सकता। महावीर ने कहा—पानी मिट्टी का शस्त्र है। वायु अग्नि का शस्त्र है। महावीर ने बहुत गहरे में जाकर शस्त्रों का सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया। उनकी भाषा में जो शस्त्र है, उसकी सूक्ष्मता की कल्पना तक पहुंचने में दार्शनिकों को भी समय लगा है। हो सकता है, वैज्ञानिकों को उस गहराई तक पहुंचाने में कई शताब्दियां और लग जाएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तविक शस्त्र है असंयम

सब शस्त्रों के मूल में जो शस्त्र है, वह है भाव-शस्त्र। मिट्टी मिट्टी का शस्त्र है, इसे बाह्य शस्त्र माना गया है। यह वास्तविक शस्त्र नहीं है। वास्तविक शस्त्र है भाव-शस्त्र और वह है असंयम। प्राणी के अन्तःकरण में जो असंयम है, वही वास्तविक शस्त्र है और वही इन सारे शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। अगर असंयम न हो तो कोई शस्त्र बनता ही नहीं।

आज निःशस्त्रीकरण का प्रश्न बलवान् बना हुआ है। शक्ति-सम्पन्न देश प्रक्षेपाास्त्रों को कम करें, दूर या लघु मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों को कम करें, टैंकों को समाप्त करें, यह चर्चा का मुख्य विषय बना हुआ है पर इन सबके पीछे जो चर्चा होनी चाहिए, वह नहीं हो रही है। इन सबके मूल में असंयम है और उसे कम करने की चर्चा बहुत कम चलती है। केवल कुछ प्रक्षेपास्त्रों को कम करने से निःशस्त्रीकरण की बात सम्भव नहीं बनेगी। एक शासक शस्त्रों को कम करने की बात करता है तो दूसरा शासक शस्त्रों को बढ़ाने की बात करता है। जब तक असंयम को कम करने की ओर मनुष्य समाज का ध्यान आकर्षित नहीं होगा तब तक निःशस्त्रीकरण की बात सफल नहीं बन पाएगी। भगवान् महावीर ने भाव-शस्त्र पर, असंयम पर बहुत बल दिया। उन्होंने कहा—मूल जड़ को पकड़ो, असंयम का कम करो। असंयम कम होगा तो बन्दूकें, तोपें तलवारें मनुष्य के लिए खतरनाक नहीं बनेंगी।

क्या वध ही हिंसा है ?

एक प्रश्न उभरता है—भगवान् महावीर ने पूरे शस्त्र-परिज्ञा अध्ययन में छह काय के जीवों का वध न करने का उपदेश दिया पर मानसिक स्तर होने वाली हिंसा की कोई चर्चा नहीं की। ऐसा क्यों ? इसका कारण क्या है ? शस्त्र-परिज्ञा अध्ययन में यह नहीं बताया गया—कलह मत करो, निन्दा मत करो, चुगली मत करो, किसी के प्रति बुरे विचार मत लाओ। केवल मत मारो का ही निर्देश मिलता है। कर्म का समारम्भ मत करो यानी वध मत करो। उन्होंने वध को ही क्यों पकड़ा ? क्या वध ही हिंसा है ? क्या प्रमाद हिंसा नहीं है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सर्वे प्राणाः न हंतव्याः अहिंसाऽसौ प्रकीर्तिताः ॥
किं हिंसा वध एवास्ति, प्रमादो वा भवेदसौ ?

इसका समाधान है–

वधः कार्य प्रमादश्च, कारणं नाम विद्यते ।
अप्रमत्तो वधार्थं नो, संतापाय न चेष्टते ॥

वध कार्य है। प्रमाद उसका कारण है। जो अप्रमत्त होता है, वह किसी के वध या संताप के लिए चेष्टा नहीं करता।

प्रश्न मानसिक हिंसा का

कभी-कभी यह स्वर भी सुना जाता है–जैन लोग जितना प्राणी को न मारने पर बल देते हैं, उतना मानसिक हिंसा या मानसिक अहिंसा पर बल नहीं देते। इसका कारण क्या है ? वस्तुतः यह अवधारणा सही नहीं है। महावीर की भाषा में हिंसा का अर्थ है असंयम। अहिंसा का अर्थ है संयम। हिंसा का अर्थ है प्रमाद। अहिंसा का अर्थ है अप्रमाद। जब संयम ही अहिंसा है, अप्रमाद ही अहिंसा है तब कौन-सी मानसिक हिंसा बचती है ? कौन-सी वैचरिक हिंसा बचती है ? कौन-सा बुरा भाव बचता है ? संयम का अर्थ है निग्रह करना। अठारह पाप का प्रत्याख्यान करने का अर्थ है संयम। जो व्यक्ति संयम को स्वीकार करता है, वह इस संकल्प को स्वीकार करता है–भंते ! मैं सामायिक करता हूं और सर्व सावद्य योग का त्याग करता हूं। सर्व सावद्य योग के त्याग का मतलब है अठारह पाप का त्याग। राग-द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद आदि-आदि अठारह पाप में समाविष्ट हैं।

स्थूल निर्देश क्यों ?

हिंसा है असंयम। इस परिभाषा से कौन-सी हिंसा मुक्त है ? इस एक सूत्र में अहिंसा का मूल हृदय आ जाता है। जड़ को पकड़ना बहुत बड़ी बात है। आज का व्यक्ति स्थूलदृष्टि वाला है। वह सूक्ष्म बात को कम पकड़ता है। इसीलिए अहिंसा के सन्दर्भ में यह निर्देश दिया गया है–किसी को मारो मत। जब तुम किसी को मारते हो तो वह छटपटाता है। क्या तुम्हें दया नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आती ? मरते समय जब प्राण निकलते हैं तब बड़ी कठिनाई होती है, बड़ी छटपटाहट होती है इसलिए तुम किसी को मत सताओ। मत मारो–यह बताकर मनुष्य के मन में करुणा का भाव पैदा किया गया, अनुकम्पा पैदा की गई। जब करुणा का विकास होता है तब वह न मारने तक ही सीमित नहीं रहता, आगे बढ़ जाता है। उसमें प्रेम का भाव बढ़ता है। जिस व्यक्ति में प्रेम और मैत्री का भाव विकसित है वह मैत्री का विकास करेगा प्राणी मात्र के लिए। जब तक पराएपन का भाव होता है, शत्रुता का भाव मन में छिपा रहता है तब तक मैत्री का भाव विकसित नहीं होता।

प्रश्न शस्त्रीकरण का

महावीर ने मनोवैज्ञानिक ढंग से इस बात को पकड़ा। यह व्यावहारिक बात है। बहुत साधारण लोगों में पहले सूक्ष्म बात नहीं कहनी चाहिए, इसीलिए शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन में निःशस्त्रीकरण की स्थूल बात समझाई गई। पहले यही बताया गया–निःशस्त्रीकरण करो, किसी को मारो मत, सताओ मत। जैसे-जैसे यह संकल्प पुष्ट होगा वैसे-वैसे असंयम का भाव कम होगा। जैसे-जैसे असंयम का भाव कम होगा वैसे-वैसे मैत्री बढ़ेगी, व्यक्ति अपने आप संयम की सीमा में अपना जीवन चलाएगा।

शस्त्रीकरण और निःशस्त्रीकरण–हमारे समक्ष ये दो शब्द हैं। आज भी शस्त्रीकरण एक समस्या है। सौ वर्ष पहले किसी ने यह सोचा भी नहीं होगा कि राजनीति के लोग कभी निःशस्त्रीकरण शब्द का उच्चारण करेंगे। जनता निःशस्त्रीकरण की बात पर आंदोलन करेगी, निःशस्त्रीकरण एक मुख्य मुद्दा बन जाएगा, पर विचार के विकास को रोका नहीं जा सकता है। एक व्यक्ति ने जो विचार दिया, शताब्दियों के बाद वह विचार दूसरों का अपना विचार बन जाता है। महावीर का यह निःशस्त्रीकरण का विचार २०वीं शताब्दी में अपने आप बलवान् बन रहा है। आज यह प्रश्न शक्तिशाली बन गया है कि अगर यह शस्त्रों की होड़ इसी गति से चलती रही तो न जाने क्या होगा ?

श्रावक की आचार-संहिता : निःशस्त्रीकरण

भगवान् महावीर ने श्रावक के लिए जो व्रतों की आचार संहिता दी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका एक सूत्र है–जैन श्रावक शस्त्रों का निर्माण नहीं करेगा, शस्त्रों के पुर्जों का संयोजन भी नहीं करेगा। अनेक लोग शस्त्रों के निर्माण में लगे हुए हैं। वे पुर्जे मंगाते हैं और शस्त्र तैयार कर लेते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में शस्त्रों का अंबार लग रहा है। निःशस्त्रीकरण का स्वर शस्त्रीकरण की परिणति के कारण शक्तिशाली होता जा रहा है। अगर अणुशस्त्रों के भंडार पर ध्यान नहीं दिया गया तो शायद एक समय ऐसा आएगा, सारी की सारी मानव सभ्यता नष्ट हो जाएगी। सम्भावना की जा रही है–दुनिया वापस प्रस्तर युग में चली जाए। महाभारत के युद्ध के बाद हिन्दुस्तान की सभ्यता, संस्कृति और विद्या का जैसा ह्रास हुआ है, उससे यह सम्भावना बलवती बनी है। अणु-शस्त्रों के युद्ध के बाद शायद मनुष्य यह प्रार्थना करेगा–हे भगवान्! हमें वही बना दो, जो हम पहले थे।

यांत्रिकरण का परिणाम

आज विज्ञान बढ़ते-बढ़ते रोबोट तक पहुंच गया है। जिस कृत्रिम मानव का निर्माण किया गया है, वह रोबोट–लोहमानव खतरनाक बन रहा है। निर्माता सोच रहे हैं कि उसे नियंत्रित कैसे किया जाए। अमेरिका, जापान आदि ने जो रोबोट बनाए हैं, वे मनुष्य के लिए विनाश का कारण बन रहे हैं। अगर यह शस्त्रीकरण और यांत्रिकीकरण का दौर ऐसे ही चलता रहा तो हमें प्रभु से प्रार्थना करनी पड़ेगी–हे भगवान्! हमें तो वापस प्रस्तर युग में ही ले चलो।

हम भगवान् महावीर को पढ़ें, आचारांग के शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन को पढ़ें। हमें पता चलेगा, इस सचाई को महावीर ने पकड़ा था। भगवान महावीर ने कहा–शस्त्रीकरण मनुष्य-जाति के लिए संहार का कारण बन सकता है। इसलिए हम प्रारम्भ से ही निःशस्त्रीकरण का मूल्य आंकें, उसे समझें और जीवन में अधिक से अधिक निःशस्त्रीकरण का प्रयोग करें। निःशस्त्र के प्रयोग का अर्थ संयम करने से जुड़ा हुआ है। निःशस्त्रीकरण मानव-जाति के लिए कल्याण का हेतु है, विकास का हेतु है, निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही मानव जाति सुख और शांति से रह सकती है। इस सचाई को और सामायिक संयम के विकास से ही समझा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म-फल भोगने की कला है सामायिक

भारतीय साहित्य में पुरुषों के लिए ६४ कलाएं और स्त्रियों के लिए ७२ कलाएं मानी गई हैं। स्वस्थ जीवन जीने के लिए कलाओं का बड़ा मूल्य है। जो व्यक्ति कला का मूल्यांकन करना नहीं जानता, वह सरस जीवन जीने का मूल्यांकन नहीं कर सकता। स्फूर्ति, आनन्द, प्रसन्नता– इन सबके लिए कला को आवश्यक माना जाता है। एक आचार्य ने लिखा–जो व्यक्ति सारी कलाओं को जानता है परन्तु धर्म की कला को नहीं जानता, उसकी सारी कलाएं व्यर्थ और अर्थहीन बन जाती हैं। इस धर्म-कला को एक वाक्य में अभिव्यक्ति दी जाए तो वह है कर्म-फल भोगने की कला।

धर्म की कला

जो व्यक्ति कर्म-फल भोगने की कला को जानता है, वह व्यक्ति धर्म की कला को जानता है। जो कर्म-फल को भोगना नहीं जानता, वह धर्म की कला के नहीं जानता। इसे दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है–जो बन्धन से मुक्ति पाने की कला को जानता है, वह धर्म की कला को जानता है। कर्म का बन्धन होता है राग-द्वेष से। पुण्य का फल उदय में आया तो राग पैदा हो गया, पाप का फल उदय में आया तो द्वेष पैदा हो गया। राग, द्वेष, पुण्य और पाप– इस शृंखला का कभी अन्त नहीं होता। आदमी पुण्य का फल भोगता हुआ उन्मत्त हो जाता है। वह पाप का फल भोगता है तो घृणा करता है। पुण्य का फल भोगता है तो राग को बल मिलता है। पाप का फल भोगता है तो द्वेष को बल मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राग और द्वेष का अस्तित्व बनाए रखने के लिए कई ऐसे माध्यम मिल गए हैं इसीलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्य और पाप आदमी को बराबर बंधन में बांधे हुए हैं। जब तक आदमी कर्म-फल भोगने की कला नहीं सीखेगा तब तक इस बन्धन की शृंखला को तोड़ा नहीं जा सकेगा।

जीवन के दो घटक तत्त्व

हमारे जीवन के दो मुख्य घटक हैं–सुख और दुःख। आदमी सुख चाहता है, दुःख नहीं चाहता। सरस जीवन चाहता है, नीरस जीवन नहीं चाहता। हमारे सामने प्रश्न है–क्या किसी व्यक्ति ने ऐसा जीवन जिया है, जिसके जीवन में सुख ही सुख आया हो, दुःख आया ही नहीं हो ? शायद दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसने जीवन में केवल सुख ही सुख भोगा हो, दुःख का अनुभव नहीं किया हो। ऐसा व्यक्ति भी नहीं मिलेगा, जिसके जीवन में केवल दुःख ही दुःख आए हों, सुख न आया हो। प्रश्न हो सकता है–व्यक्ति सुख ही सुख चाहता है, फिर दुःख क्यों आता है ? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर है–जो सुख चाहता है, वह दुःख भी चाहता है। यह निश्चित तथ्य है, एक के बिना दूसरा होता ही नहीं है।

प्रश्न बन्धन से मुक्ति पाने का

प्रश्न है–बन्धन को कैसे तोड़ा जा सकता है ? आचार्य ने उत्तर दिया–जो व्यक्ति कर्म का फल भोगते समय, पुण्य का फल भोगते समय, सुखी नहीं बनता और पाप का फल भोगते समय दुःखी नहीं बनता, वह इस बन्धन की शृंखला को तोड़ने की दिशा उद्घाटित कर लेता है। सुख के समय सुखी न बनना और दुःख के समय दुःखी न बनना, बन्धन से मुक्ति पाने की कला है और यही धर्म की कला है।

जब दुःख का विपाक और दुःख का फल मिले तब व्यक्ति दुःखी न बने, यह बात अच्छी लग सकती है किंतु सुख का फल मिले और व्यक्ति सुखी न बने, यह बात अच्छी नहीं लगती। प्रत्येक आदमी सुखी बनना चाहता है, सुखी जीवन जीना चाहता है। सुखी जीवन चाहने वाले व्यक्ति को दुःखी जीवन जीने की तैयारी भी रखनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःख और वेदन

हम गहरे में उतर कर देखें–असद् कर्म का फल मिलता है, आदमी दुःखी बन जाता है। शरीर में बीमारी है। असातवेदनीय कर्म का उदय हुआ और आदमी दुःखी बन जाएगा। बीमारी आने पर मनःसंताप हो जाता है, दुःख की रेखाएं खिंच जाती हैं, समस्याएं उभर आती हैं। यह क्या है ? लीवर की बीमारी, कैंसर की बीमारी, हार्ट की बीमारी आदि न जाने कितने प्रकार की भयंकर बीमारियां हैं। उनसे पीड़ित होने पर मन को भारी आघात लगता है। जब बीमारीजन्य वेदना होती है, आदमी एकदम दुःखी बन जाता है। क्या ऐसा हो सकता है, असद् कर्म का दुःख भोगे और आदमी दुःखी न बने ? कहा गया–ऐसा हो सकता है और यही धर्म की कला है। यह एक ऐसी कला है, जिसे जानने पर ऐसी स्थिति बन सकती है–कष्ट आने पर भी आदमी दुःखी न बने, असद् कर्म का वेदन करने पर, आदमी दुःखी न हो।

चक्रवर्ती का सौंदर्य

चक्रवर्ती सनत्कुमार की घटना प्रसिद्ध है। वे बहुत नाटकीय ढंग से मुनि बने। उन्हें अपने सौन्दर्य पर बड़ा अहंकार था। वे गर्व से कहा करते थे–इस दुनियां में मेरे से अधिक सुन्दर दूसरा कोई नहीं है। सुन्दरता का भी अहंकार होता है। वस्तुतः शरीर के भीतर मल ही मल जमा हुआ है। यह जानते हुए भी व्यक्ति सुन्दरता के अहंकार में डूबा रहता है। चक्रवर्ती के सौन्दर्य की महिमा पूरे संसार में फैल गई। कहा जाता है–एक देव बूढ़े ब्राह्मण का रूप बनाकर चक्रवर्ती का सौन्दर्य देखने आया। उसने चौकीदार से कहा–मैं चक्रवर्ती के दर्शन करना चाहता हूं।

चौकीदार ने जवाब दिया– अभी व्यक्तिगत समय है, चक्रवर्ती के दर्शन नहीं हो सकते। उनके दर्शन कल राज्यसभा में होंगे।

ब्राह्मण बोला–तुम मेरी अभिलाषा-पूर्ति में सहायक बनो, चक्रवर्ती तक मेरी यह बात पहुंचा दो–आपके दर्शनों की आकांक्षा लिए एक ब्राह्मण जवानी अवस्था में दूर देश से चला था और चलते-चलते अब बूढ़ा हो गया है। पता नहीं, वह जीएगा या नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार की भाषा

चौकीदार का मन पसीज गया। उसने ब्राह्मण की प्रार्थना चक्रवर्ती तक पहुंचा दी। चक्रवर्ती का मन करुणा से भर गया। उन्होंने तत्काल ब्राह्मण को बुला भेजा। ब्राह्मण ने चक्रवर्ती के कक्ष में प्रवेश किया। वह चक्रवर्ती के सौन्दर्य को देखते ही स्तब्ध रह गया। ब्राह्मण एकटक चक्रवर्ती को देखने लगा। चक्रवर्ती का सोया अहंकार जाग उठा। सनत्कुमार ने ब्राह्मण से कहा—अरे! तुम मेरे सौन्दर्य को अभी क्या देखते हो? कल जब मैं स्नान कर, राजसी वस्त्र और अलंकार पहन राज्यसभा में रत्नजड़ित सिंहासन पर बैठूं तब मेरा सौन्दर्य देखना, तुम्हारा मन तृप्त हो जाएगा।

चक्रवर्ती के निर्देश से ब्राह्मण के ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था हो गई। दूसरे दिन चक्रवर्ती ने अतिरिक्त तैयारी की, अपनी साज-सज्जा पर विशेष ध्यान दिया। वे अनेक बार शीशे में अपने सौन्दर्य को देखते रहे, परखते रहे, गर्व से उन्मत्त बनते रहे। आदमी जब-जब शीशे के सामने जाता है तब-तब आधा पागल-सा बन जाता है।

अहंकार : परिणाम

चक्रवर्ती पूरी साज-सज्जा के साथ राज्यसभा में पहुंचे, वे राज-सिंहासन पर बैठ गए। उन्होंने ससम्मान ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण ने चक्रवर्ती को देखा। उसका मन घृणा से भर उठा। चक्रवर्ती ब्राह्मण की मुख-मुद्रा देखकर दंग रह गए। उन्होंने ब्राह्मण से कहा—आज मेरा सौन्दर्य देखने जैसा है, क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा?

'राजन्! कल वाला सौन्दर्य चला गया। कल आप बहुत सुन्दर थे। आज सारा सौन्दर्य गायब हो गया है।'

चक्रवर्ती ने सोचा—बुढापे के साथ-साथ बुद्धि भी सठिया जाती है। जब कल मैं सामान्य स्थिति में था तब इसे सुन्दर लग रहा था और आज साज-सज्जा से युक्त हूं तब यह कह रहा है—रूप चला गया, सौन्दर्य चला गया। चक्रवर्ती ने कहा— 'ब्राह्मण! कुछ निकट आकर देखो, गौर से देखो।'

'राजन्! क्या देखूं! अब वह रूप नहीं रहा।'

'कैसे नहीं रहा?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आप पीकदान मंगवाएं और उसमें थूककर देखें ।'

सनत्कुमार ने पीकदान में थूका । उन्होंने देखा—लट और कीड़े किलबिला रहे हैं ।

सनत्कुमार ने कहा—यह क्या हुआ ?

महाराज ! जिन सोलह बीमारियों को भयंकर माना जाता है, वे सारी की सारी एक साथ आपके शरीर में पैदा हो गई हैं । आपका सौन्दर्य नष्ट हो चुका है ।'

परम आचरण है समता

चक्रवर्ती सन्न रह गए । उनका अहकार चूर-चूर हो गया । मन वैराग्य से भर गया । वे राज-पाट को छोड़कर मुनि बन गए । कठोर साधना कर अपने आपको भावित कर लिया ।

एक व्यक्ति पचास दिन भूखा रह सकता है पर सामायिक की साधना नहीं कर सकता। सामायिक की साधना सबसे कठोर साधना है । आचार्य सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में लिखा-समता परमं आचरणं । परम आचरण है समता । सुख-दुःख आदि सब स्थितियों में सम रहने की साधना सहज नहीं है ।

सनत्कुमार सामायिक की साधना में निमग्न हो गए । एक ओर रूप का गर्व समाप्त हुआ तो दूसरी ओर समता की साधना में उत्कर्ष आ गया ।

धर्म की कला का निदर्शन

कहा जाता है—वही बूढ़ा ब्राह्मण वैद्य का रूप बना मुनि के सामने प्रस्तुत हुआ । उसने मुनि से निवेदन किया—मुनिप्रवर ! मैं कुशल चिकित्सक हूं । दूर से ही आपको देखकर जान गया हूं—आप बीमार हैं । आप कुष्ठ जैसे भयंकर रोग से ग्रस्त हैं ? आप आज्ञा दें, मैं आपकी चिकित्सा कर आपकी काया को कंचन बना दूंगा ।

मुनि सनत्कुमार बोले—'वैद्यवर ! मुझे चिकित्सा की जरूरत नहीं है ।'

वैद्य ने पुनः चिकित्सा का आग्रह किया ।

मुनि ने उसके आग्रह को स्वीकार करते हुए कहा—'वैद्यवर ! आप क्या चिकित्सा करेंगे ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि ने अपने मुंह में अंगुली डाली। जहां कुष्ठ झर रहा था, उस पर थूक के कुछ छींटे डाले। देखते-देखते वहां का हिस्सा कंचन जैसा बन गया।

मुनि कष्टों को सहते जा रहे थे। उनके अशुभ कर्म का विपाक हुआ पर वे दुःखी नहीं बने। यह है धर्म की कला।

समस्या का कारण

अशुभ कर्म का विपाक होने पर, दुःख के प्रस्तुत होने पर दुःखी नहीं होना, समता के साथ कर्म-फल को भोगना धर्म की कला को जाने बिना सम्भव नहीं बनता। आज का मानव उस कला से परिचित नहीं है इसीलिए समस्याएं विकराल बन जाती हैं। थोड़ा-सा सिरदर्द होता है तो व्यक्ति घरवालों की ही नहीं, पड़ौसियों की नींद भी हराम कर देता है।

एक आदमी का रेल से अंगूठा कट गया। वह चीखा, चिल्लाया। पास बैठे एक अधिकारी ने कहा—कितने अधीर और कमजोर हो! कल एक आदमी का सिर फट गया था। उसने उफ् तक नहीं की और तुम थोड़ा सा अंगूठा कट जाने पर भी चीख-चिल्लाकर सबको परेशान कर रहे हो।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कर्म-फल को भोगना नहीं जानते। जो व्यक्ति अशुभ कर्म-विपाक को भोगने की कला को जान लेता है, वह धर्म की कला को जान लेता है। कर्म के फल को कैसे भोगना चाहिए, जो इस बात को समझ लेता है, उसमें महानता और उदारता—दोनों उद्भूत हो जाती हैं। समस्या यह है—व्यक्ति कर्म-फल को भोगते समय अपने विवेक का उपयोग नहीं करता। पुण्य का उदय आता है, व्यक्ति अहंकार से भर जाता है। वह आदमी को भी आदमी नहीं समझता। यह कितनी तुच्छता है! पुण्य के फल को भोगने का जो अविवेक है, उसमें व्यक्ति की यह मनःस्थिति बनती है।

आचार्य कुन्दकुन्द का दृष्टिकोण

इस सन्दर्भ में आचार्य कुन्दकुन्द ने जो सूत्र दिया, वह बहुत महत्वपूर्ण है—

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा।
सो तम पुणो वि बंधदि बीयं दुक्खस्स अट्ठविहं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो व्यक्ति कर्म फल को भोगता हुआ सुखी और दुःखी बनता है, वह पुनः आठ प्रकार के कर्मों को बांध लेता है।

धर्म के मर्म को वही व्यक्ति जान सकता है, जो सुख और दुःख की स्थिति में भी सुखी और दुःखी न बने। जब पुण्य का फल आता है, व्यक्ति को सुविधा और सामग्री मिल जाती है किन्तु उसमें सुखी होने का गर्व न करना सबसे बड़ी कला है।

सन्दर्भ भरत चक्रवर्ती का

भरत चक्रवर्ती ने बहुत बड़े राज्य का संचालन किया। उनके पास अपार वैभव और ऐश्वर्य था। उनके पास चौदह अलभ्य रत्न थे। वैभव और विलास की समग्र सुविधाओं के अधिकारी होते हुए भी चक्रवर्ती भरत मोक्ष में गए।

एक व्यक्ति ने भगवान् ऋषभ से पूछा–भंते ! इस परिषद् में मोक्ष में जाने वाला कौन है ?

भगवान् ने सीधा उत्तर दिया–'चक्रवर्ती भरत !'

वह व्यक्ति इस उत्तर से क्षुब्ध हो उठा। उसने परिषद् के मध्य भगवान् पर भी पक्षपात का आरोप लगा दिया।

भरत ने उसे मृत्यु-दंड दिया। वह घबरा गया।

चक्रवर्ती ने कहा–इस दण्ड से बचने का एक उपाय है। अगर एक तेल से भरा कटोरा लेकर अयोध्या के सारे बाजारों में घूमो, उसमें से अक बूंद भी नीचे न गिरे और पूरे नगर में घूम कर वापस यहां आ जाओ तो मुक्तिदान–क्षमादान मिल सकता है।

वह पूरे नगर में घूमकर सकुशल पहुंच गया, कटोरे से एक भी बूंद नीचे नहीं गिरी।

चक्रवर्ती ने पूछा–'नगर को देखा ? क्या-क्या देखा ? क्या-क्या सुना ?'

वह बोला–'केवल मौत को देख रहा था। केवल मौत की आवाज सुनी। न देखा, न कुछ सुना।'

चक्रवर्ती भरत बोले–'तुम्हारे सामने एक मौत का प्रश्न था, फिर भी तुम्हारा न गाने में रस था, न नाच में रस था और न नाटक में रस था, तुम्हारा सारा रस मौत के साथ जुड़ गया। यही स्थिति मेरी है। मैं इतना बड़ा चक्रवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हूं, इतना बड़ा राज्य संभाल रहा हूं किन्तु मेरा रस न तो भोगों में है, न राज्य में है, न किसी और पदार्थ में है। जितना पुण्य का फल भोग रहा हूं, उसमें मेरा कोई रस नहीं है। मेरा रस केवल बंधन से छुटकारा पाने में है। दिन-रात मेरे मस्तिष्क में बंधन-मुक्ति का प्रश्न चक्कर लगाता रहता है इसलिए सारे जीवन-व्यवहार को चलाते हुए भी मैं उसमें लिप्त नहीं हूं।'

घटना से जुड़ी सचाई

इस घटना से यह सचाई अभिव्यक्त होती है–पुण्य का फल भोगते समय जिस व्यक्ति का भोगों के साथ रस नहीं जुड़ता और पाप का फल भोगते समय दुःखों और कष्टों के साथ एक वेदना, तड़प, आक्रोश और भय का भाव नहीं जुड़ता, वह व्यक्ति धर्म की कला को जानता है, बन्धन से छुटकारा पाने की कला को जानता है।

लौकिक धारणा है–व्यक्ति मनुष्य का जीवन जीए तो उसे सुख का जीवन जीना चाहिए, उसे सारे पदार्थों को भोगना चाहिए। यह तर्क दिया जाता है–भगवान् ने पदार्थ बनाए किसलिए हैं ? कुछ लोग अति तर्क में भी चले जाते हैं। उनसे कहा जाए–मांस नहीं खाना चाहिए। उत्तर मिलेगा–भगवान् ने मांस बनाया किसलिए है ? संतजन त्याग का उपदेश देते हैं। जो लोग भोग में लिप्त हैं, वे इस उपदेश का मजाक उड़ाते हुए कहते हैं–संतों का यह उपदेश–त्याग करो, इसका त्याग करो, उसका त्याग करो–मान लें तो इन भोग्य पदार्थों का क्या होगा ? यदि हम इन सब भोगों को नहीं भोगें तो पदार्थ किसलिए बनाए जाते हैं ?' इस तर्क के साथ इस तथ्य को जानना जरूरी है–पुण्य के साथ-साथ पाप का पल भी जुड़ा हुआ है। यदि पुण्य के फल को अधिकाधिक भोगना है तो पाप-फल को भोगने की तैयारी भी होनी चाहिए। बाएं हाथ में घोड़ा है तो दाएं हाथ में गधा भी हो सकता है। हमारी दुनिया का यह नियम नहीं है कि हाथ में केवल घोड़ा ही आए, गधा न आए। सुख भोगने के लिए जितनी अकुलाहट है, दुःख भोगने की भी उतनी ही तैयार रहनी चाहिए।

सुखी होना दुःख को आमंत्रण देना है

एक सुन्दर मार्ग बतलाया गया–जब पुण्य का विपाक आता है, उदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आता है तब सुविधा भी मिलती है। व्यक्ति उसे भोगता है किन्तु वह उसमें इतना आसक्त न बने, सुख भोगने में ही लिप्त न हो जाए, जिससे पुण्य के फल का भोग सघन पाप का कारण बने। बहुत लोग ऐसे होते हैं, जो बड़े सुख को ही नहीं, खाने-पीने जैसे छोटे सुख को भी नहीं छोड़ सकते। सुख को छोड़ा नहीं जा सकता पर सुख-भोग के समय यह चेतना जाग जाए—पुण्य के सुख भोग कर सुखी होना दुःख को आमंत्रण देना है। यह बोध आवश्यक है। हम पुण्य के उदय होने पर प्रत्येक सुख को भोगें ही नहीं और पाप का परिणाम आए तो उसे भी नहीं भोगें।

अशुभ कर्म कैसे भोगें ?

व्यक्ति को क्रोध आता है। क्रोध अशुभ कर्म का विपाक है। बाहरी निमित्त मिलता है और क्रोध उभर आता है। कोई निमित्त बना, किसी ने गाली दी, थप्पड़ मारा और क्रोध उभर आया। इसका मूल कारण है—मोहनीय कर्म का विपाक। क्रोध चाहे निमित्त से उभरे या उपादान के कारण—उसे न भोगना धर्म की कला है। अशुभ कर्म का विपाक आए और क्रोध न आए, यह है क्रोध को न भोगना, अशुभ कर्म को न भोगना। अशुभ कर्म का विपाक आया और क्रोध कर लिया, यह है अशुभ कर्म को भोग लेना।

हृदय रोग : भावात्मक कारण

आज अनेक नई-नई बातों पर विज्ञान की खोजें हो रही हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। हृदय-रोग के बारे में कुछ तथ्य सामने आए हैं। हृदय रोग भी अशुभ कर्म के विपाक को भोगने से होता है। क्रोध, आक्रामक प्रतिस्पर्धा—ये हृदय रोग के मुख्य कारण बनते हैं। हृदय रोग के और अनेक कारण हैं किन्तु भावनात्मक कारणों में ये मुख्य कारण बनते हैं। उसका एक कारण है असहिष्णुता। किसी ने अप्रिय बात कह दी, व्यक्ति ने अपने मन में गांठ बांध ली और उसने सामने वाले व्यक्ति को क्षमा नहीं किया। आज की यह मुख्य समस्या है—क्षमा करना कोई जानता ही नहीं है। पहले क्षमा करना धर्म का तत्व था, आज यह चिकित्सात्मक तत्व बन गया है। जो हृदय रोग या कैंसर जैसी बीमारियों से बचना चाहता है, उसे क्षमा करना सीखना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। अगर व्यक्ति क्षमा करना नहीं सीखेगा, गांठ बांध लेगा तो उसका विपाक किसी न किसी बीमारी के रूप में उभरकर सामने आएगा।

जीवन की कला

पुण्य की स्थिति में आदमी को कैसा जीवन जीना चाहिए और पाप का परिणाम सामने आए, तब कैसा जीवन जीना चाहिए–इस सन्दर्भ में जैन आचार्यों ने महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन दिया। सुख और दुःख–इन दोनों स्थितियों में जो सम रहना नहीं जानता, आसक्ति और पीड़ा से मुक्त रहना नहीं जानता, वह न जीवन की कला को जानता है, न धर्म की कला को जानता है और न बन्धन से छुटकारा पाने की कला को जानता है। कर्म फल भोगने की कला ही धर्म की कला है। जो इस कला को सीख लेता है, वह बहुत दुःखों से बच सकता है। जीवन में कठिनाइयां आ सकती हैं, बीमारियां आ सकती हैं पर इन सारी परिस्थितियों में भी आदमी प्रसन्न रह सकता है।

एक भिखारी सदा प्रसन्न और खुश रहता था। एक व्यक्ति ने पूछा–'अरे भाई! तुम एक भिखारी हो, लंगड़े भी हो। तुम्हारे पास कुछ नहीं है, फिर भी तुम इतने खुश रहते हो। क्या बात है?' वह बोला–'बाबूजी! भगवान् का शुक्र है कि मैं अन्धा नहीं हूं। मैं चल नहीं सकता पर देख तो सकता हूं।'

जिसे कठिनाइयों को भोगने की विधायक दृष्टि प्राप्त हो जाती है, वह सचमुच धर्म की कला को जान लेता है, कर्म-फल भोगने की कला को जान लेता है। किस प्रकार सुख की अवस्था में गर्व से मुक्त रहें और किस प्रकार दुःख की अवस्था में प्रसन्न रहें, दीन-हीन न बनें–यह छोटी-सी बात समझ में आ जाती है तो मानना चाहिए–जीवन जीने की सबसे बड़ी कला समझ में आ गई। सामायिक अथवा समता से अनुप्राणित जीवन जीने का यह दृष्टिकोण आचार्य कुन्दकुन्द-प्रणीत समयसार से सहज फलित होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्द्वन्द्व चेतना है समता

धम वह ह जिसस वतमान का समस्या का समाधान मिल, जावन का समस्या को समाधान मिले। धर्म कोरी कल्पना या आकाशी उड़ान नहीं है। वह एक सचाई है, यथार्थ है और उससे समाधान मिलता है। समाधान का शक्तिशाली साधन है सत्य। झूठ कभी समाधान नही देता। उससे एक बार समाधान होता सा लगता है किन्तु समस्या और उलझ जाती है। सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं है, समाधायक तत्त्व नहीं है।

वर्तमान युग की एक बहुत बड़ी समस्या है तनाव। तनाव को मिटाने के लिए वैज्ञानिक क्षेत्र में काफी प्रयत्न हो रहा है, काफी दवाइयां आविष्कृत हुई हैं। तनाव मुक्ति के लिए शामक औषधियां दी जाती हैं, एक बार थोड़ा-सा तनाव मिट जाता है किन्तु वास्तव में तनाव मिटता नहीं है। रोज दवाइयां लेनी पड़ती हैं। जब तक दवा का असर रहता है, तनाव कम प्रतीत होता है, व्यक्ति नींद की शरण में चला जाता है। जैसे ही दवा का असर समाप्त होता है, तनाव पुनः आ जाता है, नींद उड़ जाती है फिर नींद के लिए गोलियां लो और जियो। यह क्रम बन जाता है। धर्म के पास भी कुछ सूत्र तनाव को मिटाने के लिए हैं, उन सूत्रों को भी जान लेना जरूरी है।

तनाव का हेतु

हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकोष्ठ हैं। घर में दो-चार अथवा पांच-दस कमरे बनते हैं किन्तु मस्तिष्क में तो इतने अधिक कमरे हैं, इतने अधिक कोष्ठ हैं कि उन्हें गिनना भी मुश्किल है। हर कोष्ठ का अलग-अलग काम है। आजकल प्रकोष्ठ की प्रक्रिया चल रही है—महिला प्रकोष्ठ, राजनीति प्रकोष्ठ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ आदि। एक संस्था से अनेक प्रकोष्ठ जुड़े हुए होते हैं। हमारे मस्तिष्क में भी बहुत सारे प्रकोष्ठ हैं। एक प्रकोष्ठ तनाव पैदा करने वाला है। उसे न बदला जाए, शिक्षित न किया जाए, तब तक तनाव मिटता नहीं है। हमें मस्तिष्क के उस प्रकोष्ठ को पकड़ना है, जो तनाव को पैदा करता है और उसे ध्यान के द्वारा शिक्षित करना है, प्रशिक्षण देना है, जिससे कि तनाव पैदा न हो, और हो तो तत्काल निकल जाए, उसका रेचन हो जाए।

प्रशिक्षण के लिए ध्यान बहुत उपयोगी है। जो शिक्षा आज चल रही है, वह तनाव को विसर्जित करने की शिक्षा नहीं है। वह उस मस्तिष्कीय प्रकोष्ठ को प्रशिक्षित करने की शिक्षा नहीं है, जो तनाव का जनक है। आज की शिक्षा व्यक्ति को तार्किक और बौद्धिक बनाती है। अधिक तार्किकता और बौद्धिकता कभी-कभी तनाव भी पैदा कर देती है।

धर्म का उपयोग

तनाव क्यों पैदा होता है ? मन में कोई एक बात आ गई, भावना में कोई बात समा गई और तनाव पैदा हो गया। शारीरिक तनाव शारीरिक श्रम से पैदा हो जाता है। थोड़ा विश्राम करते हैं, मिट जाता है। जटिल है मानसिक तनाव और उससे भी अधिक जटिल है भावात्मक तनाव। ये दोनों तनाव बहुत जटिल होते हैं। इन दोनों तनावों को मिटाने के लिए मस्तिष्क को प्रशिक्षित करना आवश्यक है। इस संदर्भ में धर्म का बहुत बड़ा उपयोग है। धर्म का एक शब्द है समता। आजकल बहुत क्षेत्रों में समता शब्द चलता है। यह राजनीति के क्षेत्र में भी चलता है किन्तु यह मूल शब्द है धर्म का। इसका अविष्कार धर्म के लोगों ने किया था। समता का तात्पर्य है—अनुकूल और प्रतिकूल, सर्दी और गर्मी—दोनों प्रकार की स्थितियों में सम रहना। गर्मी है, आदमी कमरे में आता है और सीधा बटन पर हाथ जाता है पंखा चलाने के लिए। वह एक मिनट के लिए गर्मी को सहन नहीं करता। बहुत सर्दी है, तत्काल हीटर का प्रयोग करता है। वह उसे सहन नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अपने जीवन में सर्दी और गर्मी सहन नहीं कर सकता, वह मजबूत आदमी नहीं बन सकता। ऐसा कमजोर रह जाता है कि एक ही चपेट में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह बीमार हो जाता है। बरसाती, तूफानी या विमानी हवा की चपेट में आते ही जुकाम से पीड़ित हो जाता है। उसकी रोग प्रतिरोधक शक्ति कमजोर हो जाती है।

अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियां

एक प्रश्न है–अनुकूल परिस्थितियां कौन सी हैं, जो तनाव पैदा करती हैं? लाभ, सुख, जीवन, प्रशंसा और सम्मान–ये पांच अनुकूल परिस्थितियां है। मनचाहा लाभ हो गया, आदमी बहुत खुश हो जाता है। सुख-सुविधा मिलती है तो आदमी बहुत खुश होता है। किसी ने कह दिया–तुम अभी पचास वर्ष जीयोगे, तुम्हारी आयु लम्बी है, जीवन अच्छा है। यह सुनकर वह बहुत खुश होता है। यदि कहा जाए–तुम जल्दी मर जाओगे तो उस पर क्या बीतती है? वह अधमरा-सा हो जाता है। किसी ने दो शब्द प्रशंसा के कहे, आदमी फूल जाता है। सम्मान मिलता है, सुख होता है। ये अनुकूलता की स्थितियां हैं।

अलाभ, दुःख, मरण, निन्दा और अपमान–ये पांच प्रतिकूलता की स्थितियां हैं।

धर्म है सम रहना

एक और अनुकूलता की पांच परिस्थितियां हैं, दूसरी ओर प्रतिकूलता की पांच परिस्थितियां हैं। इन दोनों में सम रहना कितनी कठिन साधना है। धर्म का अर्थ है–इन दोनों परिस्थितियों में सम रहना। जहां विषमता आई, धर्म खण्डित हो गया। यह धर्म कितना वैज्ञानिक और कितना सार्थक है। दुनिया में ऐसे आदमी कम हैं, जो इन परिस्थितियों में सम रह सकें। एक भाई ने कहा–तनाव बहुत रहता है। मैंने पूछा–कारण क्या है? उसने बताया–व्यापार ठीक नहीं चल रहा है। लाभ नहीं है, अलाभ हो रहा है। तनाव का कारण यही है। जैसे अलाभ पैदा हुआ, तनाव पैदा हो गया। आप यह न सोचें कि अनुकूलता में तनाव पैदा नहीं होता है। उसमें भी तनाव होता है। यदि लाभ बहुत हो गया तो साथ-साथ में तनाव भी बहुत बढ़ जाएगा। वह तनाव इस कारण होगा कि जो लाभ हुआ है, उसे कैसे बचाएं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन इतना आ गया, बचे कैसे ? बहुत खा लिया अब पचे कैसे ? बहुत कमा लिया, उसको कहां रखें ? इन्कमटेक्स से कैसे बचें ? चोर-डकैतों से कैसे बचें ? यह चिन्ता सताती है और तनाव पैदा हो जाता है। तनाव दोनों तरफ से है। लाभ में भी तनाव और अलाभ में भी तनाव। अनुकूलता में भी तनाव और प्रतिकूलता में भी तनाव। दोनों स्थितियों में विवेक करना बड़ा कठिन होता है। जो विवेक करना नहीं जानता, वह दोनों ही स्थितियों में समस्या को निमंत्रण दे देता है।

जरूरी है विवेक

एक व्यक्ति ने अपने घर में बिल्ली और कुत्ता—दोनों को पाल रखा था। बिल्ली बहुत बोलती थी, दिन और रात म्याऊं-म्याऊं करती थी। मालिक को बड़ा अटपटा लगता, वह सोचता—सारे दिन म्याऊं-म्याऊं करती है, आराम भी नहीं करने देती, नींद में भी बाधा डालती है। जब एक दिन बिल्ली म्याऊं-म्याऊं कर रही थी, मालिक उसे खूब पीटते हुए बोला—क्या सारे दिन म्याऊं-म्याऊं करती है ? कुत्ते ने देखा—यह बोलती है इसलिए पीटी गई है, अब मैं बोलूंगा ही नहीं। उसने मौन कर लिया। रात को घर में चोर घुस गए। चोरी हो गई। सुबह हुई। मालिक लाठी लेकर कुत्ते पर बरस पड़ा, बोला—तुझे क्यों पाला है ? इतनी रोटियां किसलिए खिलाई है ? इसलिए पाला है कि चोर आए तो भौंक कर सूचित कर दो। तुमने मौन साध रखी है। मालिक ने उसे यह कहते हुए खूब पीटा।

बिल्ली की मरम्मत हुई ज्यादा बोलने के कारण और कुत्ते की मरम्मत हुई न बोलने के कारण। प्रश्न खड़ा हो जाता है कि मौन अच्छा है या बोलना अच्छा ? क्या करें ? हमें यह विवेक करना होता है—कहीं-कहीं मौन करना भी अच्छा है और कहीं-कहीं बोलना भी अच्छा है। बोलना भी जरूरी है और मौन भी जरूरी है। जो आदमी विवेक नहीं कर पाता है, अविवेक के साथ चलता है, वह समस्या पैदा कर लेता है। यह विवेक करना होता है कि लाभ अच्छा है या अलाभ। हम यह नहीं कह सकते हैं कि लाभ अच्छा ही है और यह भी नहीं कह सकते कि अलाभ अच्छा नहीं है। कहीं-कहीं ऐसा होता है कि अलाभ आदमी को बहुत आगे बढ़ा देता है। कुछ मिला नहीं, इस चिंतन से मन में एक भावना जागती है और व्यक्ति बहुत आगे बढ़ जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाभ और अलाभ

लाभ और अलाभ–इन दोनों स्थितियों में तनाव भी पैदा होता है और इन दोनों स्थितियों में समता भी पैदा हो सकती है। समता का क्षेत्र दोनों हैं। लाभ होने पर भी समता और अलाभ होने पर भी समता। जब लाभ होता है तब व्यक्ति सोचता है–धन मिला है, संयोग हुआ है, किन्तु यह अनित्य है। लक्ष्मी किसी के साथ स्थिर नहीं रहती। उसका किसी के साथ गठबन्धन नहीं होता। राजस्थान के कवियों ने लिखा–यह पृथ्वी कुंआरी कन्या है। आज तक इसकी किसी से शादी नहीं हुई। लक्ष्मी ने किसी के साथ शादी नहीं की, इस पृथ्वी ने किसी के साथ शादी नहीं की। लोगों ने इससे मोह किया पर इसने किसी के साथ मोह नहीं किया। आई और चली गई। जब यह भावना जाग जाती है, अनित्यता की अनुप्रेक्षा से मस्तिष्क को शिक्षित कर लिया जाता है तब न लाभ तनाव पैदा करता है और न अलाभ तनाव पैदा करता है। अनित्य अनुप्रेक्षा के द्वारा जब यह बात मस्तिष्क के प्रकोष्ठ में जम गई– जो कुछ है, सब संयोग है, मेरा नहीं है, मात्र संयोग है, तब तनाव कहां से आएगा ? आप अभी इस हॉल में बैठे हैं। यह मात्र संयोग है। आप आएं और बैठ गए किन्तु दिन भर या प्रलंब काल तक बैठे नहीं रहेंगे। एक घण्टा पूरा होते ही यहां से उठकर चले जाएंगे। इसलिए कि यह मात्र संयोग है। कोई भी संयोग नित्य नहीं होता। संयोग को स्थाई मान लेने से बड़ी कोई भ्रान्ति नहीं होती और संयोग को शाश्वत मान लेने से बड़ी कोई मूर्खता भी नहीं होती। मस्तिष्क इस भावना से शिक्षित हो जाए तो लाभ भी तनाव पैदा नहीं करेगा और अलाभ भी तनाव पैदा नहीं करेगा। यह मान लिया–संयोग अनित्य है, संयोग का वियोग निश्चित होता है तो वियोग के होने पर भी अथवा प्राप्त न होने पर भी तनाव नहीं आएगा।

समता का प्रतीक

मुनि को समता का प्रतीक माना गया। साधु समता का प्रतीक कैसे होता है ? उदाहरण की भाषा है–एक साधु भिक्षा के लिए गया, काफी घरों में घूमा पर भिक्षा नहीं मिली। वह वापस खाली आ गया। तनाव पैदा होने का कारण स्पष्ट है। भूख थी इसलिए भिक्षा के लिए गया किन्तु मिला कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी नहीं। इस अलाभ की स्थिति में तनाव पैदा होना चाहिए पर तनाव पैदा नहीं होता क्योंकि उसका मस्तिष्क शिक्षित है। वह सोचता है—चलो, कोई बात नहीं, आहार करना भी एक काम था और आहार नहीं मिला तो सहज उपवास हो गया। कितना अच्छा हुआ कि आज सहज मुझे उपवास करने का मौका मिल गया। ऐसे व्यक्ति में तनाव कैसे पैदा होगा, जिसका मस्तिष्क शिक्षित हो जाता है ? मस्तिष्क का वह प्रकोष्ठ, जो समता को पैदा करता है, जागृत हो जाए तो तनाव पैदा नहीं होगा।

सुख और दुःख

सुख और दुःख तनाव पैदा करने वाले हैं। सुख भी तनाव पैदा करता है और दुःख भी तनाव पैदा करता है। किसी व्यक्ति को सुख ज्यादा मिला, सुख की सामग्री ज्यादा मिली और जीवन में सुख का संवेदन ज्यादा हुआ तो भी तनाव पैदा हो जाता है। भोग भी तनाव पैदा करता है। ज्यादा सुख मिलता है तो मन में दूसरा विकल्प आता है। जो लोग हमेशा बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं, उनके मन में आता है—चलो, जंगल की सैर करें। यह जंगल की सैर क्यों ? इसलिए कि एक स्थिति में आदमी कभी प्रसन्न नहीं रहता। उसे यह पसन्द नहीं आता कि वह एक ही स्थिति में रहे। वह स्थिति को बदलते रहना चाहता है। जो प्रतिदिन बढ़िया-बढ़िया भोजन करता है, उसके मन में कभी-कभी बाजरे की रोटी और बाजरे का दलिया खाने की बात भी आ जाती है। इसलिए आती है कि आदमी बदलना चाहता है, एक रूप में रहना नहीं चाहता। ज्यादा सुख भी तनाव पैदा कर देता है और व्यक्ति कभी-कभी कह भी देता है कि चारों ओर सुख ही सुख का वातावरण है, पदार्थ ही पदार्थ हैं। मुझे तो ऐसा जीवन जीना है, जहां ये न हों। बड़े-बड़े राजा और सम्राट् जो मुनि बने हैं, सुखों से ऊब कर बने हैं। उनके मन में विराग क्यों आया ? इसलिए कि अतिभोग विराग पैदा करता है। इतना भोग लिया, इतनी सारी सामग्री पा ली फिर भी कहीं शान्ति नहीं मिली, इसलिए छोड़ने की बात मन में आई। अगर सुख तनाव पैदा नहीं करता तो कोई भी राजा या धनी आदमी आज तक संन्यासी नहीं बनता, मुनि नहीं बनता। यह अतिभाव तनाव भी पैदा करता है, वैराग्य का एक कारण भी बनता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःख तो तनाव पैदा करता ही है। थोड़ा सा दुःख आता है, दुःख की स्थिति आती है, आदमी तनाव से भर जाता है।)

जीवन और मरण

जीवन और मरण भी तनाव पैदा करता है। जब जीवन बहुत लम्बा हो जाता है तब कभी-कभी आदमी कहता है–मैं तो जीते-जीते थक गया, ऊब गया। प्रसिद्ध कहानी है। एक बुढिया ने कहा–मैं इतनी बूढ़ी हो गई, अभी तक बुलावा नहीं आया। उसने ग्रामीण भाषा में कहा–'ऐसा लगता है कि रामजी मेरी चिट्ठी भूल गए। मुझे बुलाया नहीं, निमंत्रण नहीं दिया।' वह जीवन से ऊब गई थी और ऊब तनाव पैदा कर रही थी। मरण भी तनाव पैदा करता है। वह बुढ़िया जिस झोंपड़ी में रहती थी, एक दिन उसमें काला नाग निकला। नाग को देखते ही बुढ़िया चिल्लाई। बाहर भागी। उसने जोर से गांव वालों को पुकारा–आओ! आओ! सांप... सांप भयंकर काला नाग है, इसे पकड़ो। लोग इकट्ठे हुए, बोले–बुढ़िया मां! तुम रोज कहती थी–रामजी मेरी चिट्ठी भूल गए। मेरी चिट्ठी चूहे खा गए। आज तो सहज ही चिट्ठी आ गई थी। तुम भागी क्यों? बुढ़िया ने मासूम स्वर में कहा–'वीरां! मरणो दोरो लागै।' मरना बड़ा कठिन लगता है।

जीवन और मरण–दोनों तनाव पैदा करते हैं, किन्तु जिस व्यक्ति ने अपने मन को शिक्षित कर लिया, उसमें न जीवन तनाव पैदा करेगा और न मरण तनाव पैदा करेगा। जो मरण का वरण करते हैं, अनशन करते हैं, समाधि-मरण की प्रक्रिया में चलते हैं, उन्हें मरने का कोई डर नहीं होता, कोई तनाव नहीं होता।

निंदा और प्रशंसा

निंदा और प्रशंसा भी तनाव पैदा करती हैं। बहुत ज्यादा प्रशंसा होती है तो आदमी सुनते-सुनते ऊब जाता है, एक तानव पैदा हो जाता है। निंदा सुनते ही आदमी का आवेश प्रखर हो जाता है, चेहरा तनाव से भर जाता है। जिस व्यक्ति का मस्तिष्क प्रशिक्षित है, वह न प्रशंसा की स्थिति में तनाव में आएगा और न निंदा की स्थिति में तनाव में जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गुरुदेव कहते हैं–मैंने जीवन में बहुत प्रशंसा पाई और बहुत निंदा भी सुनी। अगर ये दोनों नहीं होते तो जीवन में संतुलन नहीं बनता। कोरी प्रशंसा आदमी को फूलने का मौका देती है, गर्व से भर देती है और कोरी निंदा हीन-भावना पैदा करती है। हीन भावना और अहं भावना–दोनों से वही व्यक्ति बच सकता है, जिसने अपने आप को शिक्षित कर लिया। जिसका मस्तिष्क शिक्षित हो गया, वह दोनों स्थितियों में सम रह सकता है।

सम्मान और अपमान

सम्मान और अपमान–ये दोनों जटिल स्थितियां हैं। सम्मान मिलता है, एक अलग प्रकार का तनाव पैदा हो जाता है। जैसे ही सम्मान मिलता है, व्यक्ति की चाल बदल जाती है। वह अकड़ कर चलता है। उसका मुंह ऊपर हो जाता है, वह मुंह उठाकर ही नहीं देखता। आकृति बदल जाती है, भाव-भंगिमा बदल जाती है। यदि मस्तिष्क शिक्षित हो जाता है तो दोनों स्थितियों में समता बनी रहती है। अपमान हो जाए तो वही बात और सम्मान मिल जाए तो वही बात। वह इस सचाई को समझ लेता है–आत्मा में न सम्मान है, न अपमान, किन्तु वह समान है। समान है इसलिए सम्मान और अपमान की कोई बात नहीं है। ये सब केवल लुभाने वाली बातें हैं और वह उनसे ऊपर उठ जाता है।

वह मुझ तक नहीं पहुंचती

एक दार्शनिक संत बहुत पहुंचा हुआ था। लोग उसकी बात को समझ नहीं पा रहे थे। वे बहुत बार उसके बारे में ऊंटपटांग बातें भी कर जाते। उसकी निंदा भी करते। ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है। लोग सुकरात के तत्त्वज्ञान को समझ नहीं पाए, जहर की प्याली पिला दी। आचार्य भिक्षु को समझ नहीं पाए, न जाने कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ी और कितनी निंदा हुई। आचार्य भिक्षु ने अपने जीवन में जितना अपमान पाया, उतना बहुत कम लोगों के जीवन में होता होगा पर उन पर कोई असर नहीं हुआ। उस दार्शनिक संत की निंदा का स्वर बहुत दिन तक चलता रहा। एक व्यक्ति ने पूछ लिया– दार्शनिक महोदय! आपकी इतनी निंदा होती है। क्या आपको गुस्सा नहीं आता? आपमें हीनभावना नहीं आती? दार्शनिक ने बहुत मार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर दिया–भैया ! जो निंदा होती है, वह मेरे पास आती है किन्तु उस समय मैं अपने आप को इतना ऊंचा उठा लेता हूं कि वह मेरे पास पहुंच ही नहीं पाती । मुझमें हीनभावना कैसे आएगी ?

मस्तिष्क को साधें

जिस व्यक्ति ने आपको ऊंचा उठा लिया, उस तक निंदा या प्रशंसा की बात पहुंच ही नहीं पाती । उसमें कैसे अहंकार आएगा और कैसे हीनभावना जागेगी ? ऊंचा उठाने का तात्पर्य है–मस्तिष्क को इस प्रकार से साध लेना कि वह दोनों स्थितियों में एकरूप रह सके ।

ये पांच द्वन्द्व हैं, अनुकूलता और प्रतिकूलता के संवेदन को जन्म देने वाले घटक तत्त्व हैं । अनुकूलता और प्रतिकूलता की परिस्थितियां तनाव पैदा करने वाली हैं । पूरा समाज इन परिस्थितियों के कारण तनाव को भोग रहा है । मानसिक तनाव क्यों पैदा होता है ? भावनात्मक तनाव क्यों पैदा होता है ? इनका कारण ये पांच अनुकूल और प्रतिकूल द्वंद्व हैं । पांच परिस्थितियां अनुकूलता की हैं और पांच प्रतिकूलता की । इन दस परिस्थितियों के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाए, उस दृष्टिकोण से मस्तिष्क प्रशिक्षित हो जाए तो समस्या का समाधान सामने दिखाई देगा ।

टूटती है भ्रांतियां

ध्यान का मतलब है सचाइयों का अनुभव करना, सचाइयों को जानना । जब तक हम भीतर में नहीं जाएंगे, हमें सचाइयों का पता नहीं चलेगा । बाहर में जो सचाइयां प्रतीत होती हैं, उनके साथ बहुत भ्रांति पैदा हो जाती है । उपाध्याय यशोविजयी ने लिखा–जिस व्यक्ति ने अपने आप को नहीं देखा, आत्मा को नही देखा, उसकी पदार्थ के प्रति होने वाली भ्रांति कभी टूटेगी नहीं । उस व्यक्ति की पदार्थ के प्रति भ्रांति टूटती है, जिसने अपने आपको देखा है । जब हम अपनी आत्मा को जानने की दिशा में आगे बढ़ेंगे तब हमारी पदार्थ विषयक भ्रांतियां टूटेंगी । हमारा प्रशिक्षण अलग प्रकार का बन जाएगा, मस्तिष्क को नई जानकारियां मिलेंगी । जब तक पदार्थ के जगत् में ही रहेंगे, अपने भीतर झांकने का प्रयत्न नहीं करेंगे तब तक भ्रांतियां बढ़ती ही चली जाएंगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पांच मित्र थे। वे सब यह मानते थे–भाई! हमारी गाढ़ मित्रता है, हम सब एक-दूसरे के सहयोगी हैं। सब परार्थ दृष्टि वाले हैं। स्वार्थी कोई नहीं है। एक दिन उत्सव का प्रसंग था। एक मित्र ने कहा–कितना अच्छा हो, आज खीर बना लें। सबने कहा–प्रस्ताव सुन्दर है। एक बोला–चावल मैं ले आऊंगा। दूसरा बोला–दूध मैं ले आऊंगा। तीसरा बोला–चीनी मैं ले आऊंगा। चौथा बोला–चूल्हा और ईंधन मैं ले आऊंगा। पांचवां मित्र मौन रहा। सबने पूछा–बोलो, तुम क्या लाओगे। पांचवां मित्र बोला–मैं अपने भाई-बहनों को खाने के लिए ले आऊंगा।

मित्रता की भ्रांति टूट गई। सबने कहा–कितना स्वार्थी है। केवल अपना व्यक्तिगत स्वार्थ देखता है।

भीतर है सुख

जब ध्यान करना आदमी शुरू करता है तो भ्रांतियां टूटनी शुरू हो जाती है। व्यक्ति के मन में एक भ्रांति यह रहती है कि सुख खाने में है। अच्छा खाने में सुख तब मिलेगा जब शाक में खूब मिर्च-मसाले डालेंगे। जब व्यक्ति शिविर में ध्यान करने आता है, तब यह भ्रांति टूट जाती है। जब भीतर झांकना शुरू करता है तब लगता है–अरे! सुख तो भीतर है। एक घण्टा ध्यान किया और अपूर्व आनन्द आया। प्रश्न हो सकता है–उस समय क्या मिला? क्या मसालेदार खाद्य पदार्थ मिले? मिठाइयां या चटपटी चीजें मिलीं? कुछ भी नहीं मिला फिर आनन्द कहां से आया? वह आनन्द बाहर से नहीं, भीतर से फूटा है। यह सचाई ध्यान से उपलब्ध होती है। जब यह सचाई सामने आती है, पदार्थ में सुखारोपण की भ्रांति टूट जाती है।

ध्यान भ्रांति को तोड़ने और सचाई को उपलब्ध करने का साधन है। जो व्यक्ति केवल बाह्य जगत् में ही जीता है, अन्तर्जगत् में कभी प्रवेश नहीं करता, उसका जीवन अच्छा नहीं होता। अच्छा जीवन वह होता है, जिसमें इन द्वंद्वों को सहने की शक्ति होती है। समता व्यक्तिगत है। इसका दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। लाभ-अलाभ आदि स्थितियों में सम रहना, एक जैसा रहना, हमारी व्यक्तिगत क्षमता है। यह व्यक्तिगत क्षमता जैसे-जैसे बढ़ती है, तनाव कम होता जाता है। मैं मानता हूं–एक साथ तनाव के चक्र को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोड़ देना बड़ा कठिन है। क्योंकि मस्तिष्क के दूसरे प्रकोष्ठ को हमने इतना शिक्षित कर रखा है कि वही-वही बात हमारे सामने बार-बार आती है। यह सामान्य प्रकृति है। इसमें कोई अपवाद ढूंढता भी मुश्किल है। लाभ हुआ और व्यक्ति बहुत खुश हो जाएगा। किसी से कुछ करवाना है तो उसकी प्रशंसा कर दो, न होने वाला काम भी बन जाएगा और थोड़ी-सी निंदा कर दो, बनने वाला काम भी बिगड़ जाएगा। इस सामान्य प्रकृति से बचने वाले लोग विरल होते हैं।

कहां से आता है यह स्वर !

शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास को एक किसान ने पीट दिया। यह प्रश्न शिवाजी के सामने आया। किसान ने सोचा–अब तो फांसी की सजा ही मिलेगी। समर्थ रामदास बोले–शिवा ! इसने मुझे पीटा है, दण्ड मैं दूंगा। तुम्हें इसे दण्ड देने का अधिकार नहीं है। शिवाजी बोले–आपकी जैसी मर्जी। रामदास ने कहा–'शिवा ! इस किसान को पांच बीघा जमीन और दे दो।' सब आश्चर्य में पड़ गए, बोले–'यह क्या दण्ड दिया आपने ?' समर्थ रामदास ने कहा–'बेचारा गरीब है। यदि गरीब नहीं होता तो एक गन्ने के टुकड़े के लिए मुझे नहीं पीटता। इसे पांच बीघा जमीन दे दो फिर यह किसी को पीटेगा नहीं।'

यह स्वर कहां से निकल सकता है ? जिस व्यक्ति ने समता को साध लिया, अपने मस्तिष्क को प्रशिक्षित कर लिया, वही इस प्रकार का दण्ड दे सकता है। इस बात पर हम ध्यान केन्द्रित करें–ध्यान का अर्थ मस्तिष्क को ऐसा प्रशिक्षित कर लेना है कि आदमी तनाव से मुक्ति पा सके और समता की दिशा में आगे बढ़ सके। समता और तनाव मुक्ति में अंतःसंबंध है। समता की उपलब्धि का अर्थ है–तनाव से मुक्ति। यह एक महान् उपलब्धि है और वह ध्यान के द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तराजू के दो पल्ले

तुला प्रतिष्ठित है। वह तोलने वाला बहुत बड़ा है, जो दूसरों को तोल सके। तराजू के साथ समता की बात जुड़ी हुई है, न्याय की बात जुड़ी हुई है। तराजू के दो पल्ले समान होने चाहिए। समता के लिए तराजू की उपमा प्रयुक्त हुई है और न्याय के लिए भी तराजू की उपमा प्रयुक्त होती रही है। यद्यपि हमारे कवियों ने तुला में भी दोष देखा है--हे तुला ! तुम प्रामाणिक हो, सबको ठीक मापती हो, फिर भी तुम न्याय नहीं करती, क्योंकि जो भारी है, उसे नीचे ले जाती हो और जो हल्का है, उसे ऊपर उठा देती हो।

प्रामाणिक पद गही तुला, यह तुम करत अन्याय।
अध पद देत गरिष्ठ को, लघु उन्नत पद पाय॥

अनध्यवसाय : प्रत्यभिज्ञान

आचारांग में भी तुला शब्द का प्रयोग किया गया है-**'एयं तुलमन्नेसिं'** इस तुला की अन्वेषणा करो। तुला का संधान सफल होना चाहिए। यह नहीं कहा गया-इस तुला को देखो। हमारे देखने की प्रक्रिया का एक नाम है--अनध्यवसाय। आदमी बाजार में जाता है, हजारों चीजों को देखता है। उससे पूछा जाए--अमुक दुकान में कौन-कौन-सी चीजें थीं ? उसका उत्तर होगा--मुझे पता नहीं। बाजार में हजारों लोग मिलते हैं। किसी व्यक्ति से पूछा जाए--तुमने कितने लोगों को देखा ? तुम्हें कितने व्यक्ति मिले ? वह इसका सम्यक् उत्तर नहीं दे पाएगा। इस दर्शन का नाम है--अनध्यवसाय। जिसके साथ अध्यवसाय नहीं जुड़ता, उसे पहचाना नहीं जा सकता।

दूसरा तत्त्व है--प्रत्यभिज्ञान। कभी कभी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का नाम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पता आदि पूछ लेता है और जब कभी पुनः मिलता है तब उसे पहचान भी लेता है। यह है प्रत्यभिज्ञान–पहचानने जैसा निरीक्षण।

अनध्यवसाय और प्रत्यभिज्ञान–इन दोनों से कोई सार्थक निष्पत्ति उपलब्ध नहीं होती।

अन्वेषण

तीसरा तत्त्व है–अन्वेषण–सतत निरीक्षण। सतत निरीक्षण के बिना ज्ञान और सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है। वस्तुतः सतत निरीक्षण ही अनुसंधान है। एक, दो या पांच बार देखना सतत संधान नहीं होता। सतत संधान का अर्थ है–जब तक किसी वस्तु के नियम का पता नहीं चले, तब तक उसे देखते चले जाना। यदि हमें एक श्लोक के हृदय को समझना है तो उसे एक-दो बार पढ़कर ही नहीं समझा जा सकता। हम उस श्लोक को पढ़ें, पढ़ते चले जाएं और तब तक पढ़ते रहें जब तक कि वह श्लोक अपना अर्थ स्वयं प्रकट न कर दे। जब श्लोक अपना अर्थ प्रस्तुत करेगा तब हम उसके हृदय तक पहुंचने में सफल होंगे।

बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है–तुला का अन्वेषण करो, खोजते चले जाओ। जब तक चलनी में पानी न जम जाए, नियम का पता न लग जाए तब तक खोजते चले जाओ। आज यह नियम ज्ञात है–जहां-जहां धुआं है, वहां-वहां अग्नि होगी। यह अकाट्य नियम है पर जहां अग्नि है, वहां धुआं होगा, यह जरूरी नहीं है। अग्नि धुएं के बिना भी हो सकती है पर धुआं अग्नि के बिना नहीं होता। यह एक सामान्य नियम लगता है लेकिन इस नियम का पता लगाने में न जाने कितनी पीढ़ियां खपी हैं, न जाने कितने विद्वानों को खपना पड़ा है।

जरूरी है सतत प्रयत्न

ज्ञान-प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करना होता है। इसके बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए सबसे पहले निरीक्षण करना होता है। हम जैसे-जैसे निरीक्षण करेंगे, वैसे-वैसे तथ्यों का पता लगने लगेगा। तथ्यों का निरीक्षण करना बहुत जरूरी है। हम एक कपड़ा हाथ में लें और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका निरक्षण करते चले जाएं तो कुछ क्षणों के बाद कपड़े का रंग बदलने लगेगा। जब हमारा निरीक्षण उस पर सघन रूप से केन्द्रित होगा तब कपड़ा अपनी गाथा कहने लगेगा–मैं क्या हूं, किससे बना हूं और मैं कैसा हूं, आदि आदि सारी बातें कपड़ा कह देगा, जिसे सुनकर हम आश्चर्य करेंगे। धन्वंतरि और लुकमान ने पौधों के गुण-धर्म का पता कैसे लगाया ? वे पौधे के पास जाकर बैठ जाते, उसका सघन निरीक्षण करते और उससे पूछते–बताओ ! तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गुण-धर्म क्या है ? तुम्हारा उपयोग क्या है ? निरीक्षण करते-करते एक क्षण ऐसा आता, पौधा अपने आप सब कुछ कह देता–मेरा यह नाम है, मेरा यह गुण-धर्म है, मैं अमुक बीमारी के लिए उपयोगी हूं, आदि-आदि। बिना प्रयोगशाला के ये सारे अन्वेषण किए गए, जो पूरी तरह सफल रहे।

परीक्षण की फलश्रुति

आज प्रयोगशाला में वैज्ञानिक बैठता है, परीक्षण, निरीक्षण और प्रयोग करता चला जाता है। ऐसा करते-करते वह तथ्य और नियम को पकड़ लेता है। कुछ वर्ष पूर्व ही एक भारतीय वैज्ञानिक ने एक जीवाणु का पता लगाया है। आज की बड़ी समस्या है–समुद्र में तेल वाहक जहाज चलते रहते हैं। कभी-कभी वे जहाज तूफान आदि की चपेट में आकर, टकराकर टूट जाते हैं। टैंकर का सारा तेल समुद्र की सतह पर फैल जाता है। समुद्र के जल के ऊपर तेल की परत जम जाती है। समुद्र का पानी काम का नहीं रहता। वह जीवों को नुकसान भी पहुंचाता है। भारतीय वैज्ञानिक ने जिस जीवाणु का पता लगाया है, यदि उसे समुद्र में छोड़ दिया जाए तो वह समुद्र के जल पर फैले हुए तेल को खा जाएगा, समुद्र का पानी पुनः स्वच्छ बन जाएगा।

महत्वपूर्ण सूत्र

जीवाणु की खोज का यह कार्य सतत निरीक्षण और गहन अनुसंधान से सम्भव बना है। एक दो बार देखने या पढ़ने मात्र से सचाई का पता नहीं चलता। जब दृढ़ संकल्प और सतत निरीक्षण का योग होता है तब नियम या सत्य का पता चलता है। बहुत कठिन होता है नियम का पता लगाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उसे पाना। सत्य की प्राप्ति सहज नहीं है इसीलिए अन्वेषण का मूल्य बना हुआ है। इस वैज्ञानिक युग में वह अधिक प्रासंगिक और मूल्यवान् सिद्ध हुआ है।

कहा गया–तुला का अन्वेषण करें। प्रश्न होता है–तुला क्या है? उसका निरीक्षण-अन्वेषण कैसे करें? आचारांग का महत्वपूर्ण सूक्त है–

जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ॥

जो अपने आपको जानता है, वह दूसरे को जानता है। जो दूसरे को जानता है, वह अपने आपको जानता है।

कल्पना करें–दो जीव हैं। एक व्यक्ति स्वयं है और एक दूसरा आदमी है। व्यक्ति पहले अपने आपको देखे। वह सोचे–मुझे किसी ने गाली दी तो मुझ पर क्या प्रतिक्रिया हुई? मेरा मन कैसा बना? मेरे मन में क्या भावना आई? गाली की अपने भीतर क्या प्रतिक्रिया हुई? वह उसका निरीक्षण करे। उसी व्यक्ति ने सामने वाले व्यक्ति को गाली दी। वह देखें– इस व्यक्ति के भीतर क्या प्रतिक्रिया हो रही है? जो अपने भीतर प्रतिक्रिया हुई, क्या वैसी ही दूसरे के भीतर प्रतिक्रिया हुई? या अन्य प्रकार की प्रतिक्रिया हुई? व्यक्ति सामने वाले व्यक्ति की प्रतिक्रिया को पढ़े और उसके सन्दर्भ में पुनः अपने आपको देखे, देखता चला जाए।

पढ़ें सुख-दुःख के संवेदन

गर्मी के मौसम में एक व्यक्ति ठण्डी हवा के झोंकों के बीच बैठा है। ठण्डी हवा से उस व्यक्ति को सुख मिला, तुम्हें कैसा लगा? सामने वाले को ठण्डी-ठण्डी हवा लगी तो उसे कैसा लगा? तुम्हें गर्म हवा लगी तो तुम्हें कैसा लगा? और उसे गर्म हवा लगी तो उसे कैसा लगा? हम इस नियम को आगे बढ़ाएं। कल्पना करें–बहुत गर्मी का मौसम है। एक ही कमरा है और उसमें एक ही दरवाजा है। एक व्यक्ति उस दरवाजे में जाकर बैठ गया। उसे वहां बैठना कैसा लगेगा? तुम्हें कैसा लगेगा? दूसरा व्यक्ति उससे कहे–भीतर बैठ जाओ। उसे कैसा लगेगा? तुम्हें कैसा लगेगा? तुम इस नियम को पढ़ो, इस घटना का निरीक्षण करो। इसका अर्थ है–अपने एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामने वाले व्यक्ति के सुख-दुःख के संवेदन को पढ़ना। तुम पढ़ो, निरीक्षण करो, पढ़ते चले जाओ, निरीक्षण करते चले जाओ। पढ़ते-पढ़ते, निरीक्षण करते-करते एक क्षण वह आएगा, जब तुम आत्म-तुला को साक्षात् कर लोगे।

आत्म-तुला का सिद्धान्त

महावीर को एक दिन में ही यह पता नहीं चला—जैसे मुझे सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सामने वाले प्राणी को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय होता है। सतत निरीक्षण और अन्वेषण से महावीर ने इस नियम का पता लगाया और आत्म-तुला के सिद्धांत की स्थापना हो गई। महावीर ने कहा—ऐसे-ऐसे भी लोग हैं, जो कहते हैं—'हमें दूसरों से क्या ? हमें अपना देखना है। हम किस-किस की चिन्ता करेंगे ?' वे दूसरों की चिन्ता नहीं करते, नौकरों, कर्मचारियों और शूद्रों की चिन्ता नहीं करते, पशु-पक्षी और सामान्य प्राणियों की चिन्ता नहीं करते। मध्यकाल में स्त्रियों के लिए तो ऐसे कड़े नियम बना दिए गए, जिनमें क्रूरता ही क्रूरता झलकती है। कारण यही रहा—आत्म-तुला के इस नियम को समझा नहीं गया।

निदर्शन की भाषा

भगवान् महावीर ने इस सिद्धांत को उदाहरण की भाषा में समझाया—पचास आदमी बैठे हैं। एक सिगडी में अंगारे जल रहे हैं। मुखिया व्यक्ति ने एक व्यक्ति से कहा—अंगार-पात्र उठाकर अमुक व्यक्ति के हाथ में रख दो। वह व्यक्ति संडासी से अंगार-पात्र उठाकर दूसरे व्यक्ति के हाथ में रखेगा। वह सोचता है—यदि मैं अपने हाथ से अंगार-पात्र उठाऊंगा तो मेरा हाथ जल जाएगा किंतु वह यह नहीं सोचता—हाथ से अंगार-पात्र उठाने से मेरा हाथ जलता है तो उसका भी हाथ जल सकता है। उसका हाथ भी मेरे जैसा ही है। जिस व्यक्ति में ऐसा चिन्तन जागता है, वह दूसरे के हाथ पर अंगार-पात्र नहीं रख पाएगा। स्वयं संडासी से अंगार-पात्र उठाए और दूसरा उसे हाथ में ले, यह न्याय या आत्म-तुला की बात नहीं है, पक्षपात और विषमता की बात है।

व्यवहार-परिवर्तन का सिद्धांत

आदमी अपने लिए सुख चाहता है पर दूसरे की कठिनाई को नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझता। वह इस नियम को नहीं जानता–मुझ पर कुछ होता है तो क्या बीतती है ? सामने वाले व्यक्ति पर भी वैसा ही बीतता होगा। हम सामने वाले प्राणी के विषय में सोचें। चाहे वह मनुष्य है, गाय है, घोड़ा है, कुत्ता है, वनस्पति या मिट्टी है। हम इस बात पर ध्यान दें–यदि मैं इस स्थान पर होता तो मुझ पर क्या बीतती ? यदि यह नियम समझ में आ जाए, आत्मसात् हो जाए तो आदमी का सारा व्यवहार बदल जाए।

यह आत्म-तुला का सिद्धांत, जिसका भगवान् महावीर ने प्रतिपादन किया, हमारे समूचे व्यवहार के परिवर्तन का सिद्धांत है। जो अपने अध्यात्म के नियम को जानता है, वह बाहर के नियम को जानता है और जो बाहर के नियम को जानता है, वह अपने अध्यात्म के नियम को जानता है। बाहर या भीतर, अपना या पराया–दोनों के लिए नियम समान हैं, इस बात को जाने तो व्यवहार बदल जाएगा।

कठिन है निरीक्षण करना

वर्तमान समस्या यह है–व्यक्ति की दृष्टि में अपने एवं अपने परिवार के लिए नियम दूसरा होता है और दूसरे लोगों के लिए नियम कोई दूसरा होता है। आज जितना मिलावट का धंधा चलता है, वह दूसरों के लिए है, अपने लोगों के लिए नहीं है। इसका कारण है–व्यक्ति आत्म-तुला के सिद्धांत को नहीं जानता, इस तुला का अन्वेषण नहीं करता।

बहुत कठिन है निरीक्षण करना, अन्वेषण करना। आदमी शॉर्टकट से जाना चाहता है। आज राजपथ इतने संकरे हो गए हैं कि उसे पगडंडी का चुनाव करना पड़ रहा है। इससे समस्या पैदा हो गई और आत्म-तुला का सिद्धांत जटिल बन गया। दूसरों की बात छोड़ दें, धार्मिक लोग भी इस सिद्धांत का प्रयोग नहीं करते हैं। अगर धार्मिक लोग इस तुला का प्रयोग करते तो आज मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन आ जाता।

वर्तमान समस्या

आज की सबसे बड़ी समस्या है मानवीय सम्बन्धों में तनाव और संघर्ष। पुरानी पीढ़ी के लोग अनपढ़ थे, सहन करना जानते थे किन्तु आज लोगों की समझ बहुत बढ़ी है इसलिए उनमें संवेदनशीलता भी बढ़ी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवेदनशीलता के कारण आपसी सम्बन्धों में तनाव और संघर्ष के स्फुलिंग उछलते रहते हैं।

भगवान् महावीर ने आत्म-तुला के सिद्धांत का व्यवहार के सन्दर्भ में प्रतिपादन किया। जैन श्रावक की आचार-संहिता आत्म-तुला के सिद्धांत का व्यावहारिक रूप है। श्रावक की आचार-संहिता का एक नियम है—मैं अपने आश्रित प्राणी की आजीविका का विच्छेद नहीं करूंगा। चाहे वह नौकर है, कर्मचारी है या पशु। जो आश्रित है, वह उसकी आजीविका का विच्छेद नहीं कर सकता।

शोषण-परिहार का सिद्धांत

आज शोषण की समस्या गम्भीर है। यह स्वर उभर रहा है—शोषण नहीं होना चाहिए, श्रम का उचित मूल्य मिलना चाहिए। यदि हम अतीत को पढ़ें तो हमारा निष्कर्ष होगा—शोषण का विरोध सबसे पहले भगवान् महावीर ने किया। महावीर ने कहा—किसी के भक्तपान का विच्छेद मत करो। जो व्यक्ति जिसे पाने का हकदार है, उसे तुम मत छीनो। वह श्रम करता है और तुम उसका हक छीन लेते हो, यह न्याय नहीं है। शोषण के परिहार का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है आत्म-तुला का सिद्धांत। किसी की आजीविका मत छीनो, किसी का शोषण मत करो। यदि इस सिद्धांत पर अमल होता तो हड़तालें नहीं होतीं, मिलें बन्द नहीं होतीं। अहिंसा और समता के माध्यम से मानवीय चेतना को जगाने का जितना काम महावीर ने किया, उतना किसी ने किया या नहीं, यह भी अनुसंधान का विषय है। आचारांग सूत्र में अहिंसा और समता की चेतना से समृद्ध समाज-रचना के सूत्र भरे पड़े हैं। क्रांति सूत्र है आचारांग। उसका एक सूत्र है—आदमी तराजू के एक पल्ले में अपने को बिठाए, दूसरे पल्ले में सामने वाले प्राणी को बिठाए और दोनों को समदृष्टि से तोले, आत्म-तुला की अन्वेषणा करे। महावीर के शब्दों में यही सच्ची खोज और अन्वेषणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समता की चेतना का विकास

जागरूकता का अन्तिम बिन्दु है समता। यह आज का प्रिय शब्द है। विषमता के विषय में जितना चिन्तन वर्तमान युग में हुआ है, उतना अतीत में नहीं हुआ होगा। आज सामाजिक और आर्थिक विषमता मान्य नहीं है। इनके विषय में अनेक क्रांतियां घटित हुई हैं और अनेक भविष्य के गर्भ में हैं। समाज के स्तर पर समता चाहिए। आर्थिक समानता भी अपेक्षित है। निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि आज का सबसे अधिक अप्रिय शब्द है विषमता और सबसे अधिक प्रिय शब्द है समता।

आज के विचारकों ने सामाजिक और आर्थिक विषमता के विषय में बहुत चिन्तन किया है, किन्तु चैतसिक विषमता और समता के विषय में कम चिन्तन किया है। हम सोचें, आर्थिक और सामाजिक विषमता का कारण क्या है ? मनुष्य के चित्त की स्थिति समतामय नहीं है, इसलिए उसका प्रतिबिम्ब सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ता है और अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ता है पर हमने मूल कारण को परदे के पीछे रखा है और जो मूल कारण नहीं है, उसको बहुत आगे ला दिया है, उसे ही सिंहासन पर बिठा दिया है। यही कारण है कि समस्या सुलझने के बदले उलझती जा रही है।

द्वंद्व है संसार

सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन की सरलतम परिभाषा यह की जा सकती है कि द्वन्द्वों का जीवन संसार का जीवन है और द्वन्द्वमुक्त जीवन अध्यात्म का जीवन है। चेतना के स्तर पर अनेक द्वन्द्व हैं और ये द्वन्द्व संसार का निर्माण करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार क्या है ? यह एक अनुभूति है द्वन्द्व की। जोड़ा होना, युगल का होना,यह है संसार। इसमें सब दो होते हैं, एक कोई नहीं होता। एक होना अध्यात्म है, दो होना संसार है। लाभ और अलाभ–यह एक द्वन्द्व है। पदार्थ और व्यक्ति दो हैं। इष्ट पदार्थ का योग होना लाभ है। इष्ट पदार्थ का वियोग होना या जो चाहा, उसकी प्रप्ति न होना अलाभ है। यह एक द्वन्द्व–जोड़ा बन गया। आदमी की चैतसिक शक्ति का बहुत बड़ा भाग इस द्वन्द्व में बीतता है। इसने एक विचित्र मानसिक स्थिति का निर्माण किया है। इसके द्वारा एक आदत निर्मित हुई है, वह है सुख-दुःख की आदत। जब जो चाहा, उसकी प्राप्ति से आदमी प्रसन्न हो जाता है, सुख का संवेदन करता है और जो चाहा, वह नहीं मिला तो वह अप्रसन्न या दुःखी हो जाता है।

आत्महत्या का हेतु

अनेक व्यक्ति या प्रायः सभी व्यक्ति अलाभ की स्थिति में भयंकर वेदना का अनुभव करते हैं। अलाभ में मानसिक स्थिति अधोगामी हो जाती है। व्यापार में घाटा लगा, व्यापारी आत्महत्या कर डालता है। परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुआ, विद्यार्थी आत्महत्या करने या घर से पलायन करने की बात सोच लेता है। पदावनति हुई और बड़ा अफसर भी व्याकुल होकर प्राण-त्याग के लिए तत्पर हो जाता है। आत्महत्या है जानबूझकर मरना। आदमी ऐसी मृत्यु का इसलिए वरण करता है कि उसने अपने मन को लाभ और अलाभ से जोड़ रखा है। कभी-कभी लाभ में भी वह मर जाता है। अति लाभ होने पर व्यक्ति उस खुशी को सहन नहीं कर पाता, और वह मर जाता है। हमारे मन की स्थिति इस द्वन्द्व के साथ ऐसी जुड़ी हुई है कि उसने चित्त की विषमता का निर्माण कर दिया है। चित्त की विषमता मूल व्याधि है। यह जितनी सताती है उतनी न आर्थिक विषमता सताती है और न सामाजिक विषमता सताती है। विषमता आदमी में उथल-पुथल ला देती है। यह सबसे अधिक खतरनाक है।

हमने एक ऐसी मानसिक स्थिति का निर्माण कर रखा है कि सुख की स्थिति आने पर हम फूल जाते हैं और दुःख की स्थिति में मुरझा जाते हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि व्यक्ति की चेतना का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। सुख के साथ अहं की ग्रंथि और दुःख के साथ हीनता की ग्रंथि जुड़ जाती है। दुःखी आदमी हीनभावना से ग्रस्त होता है और इतना ग्रस्त कि वह निराशा का जीवन जीने लगता है। वह सोचता है, यह संसार मेरे जीने योग्य नहीं है। जीवन में मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं है। सारा जीवन बेकार है।

सुख के साथ अहं की ग्रंथि घुलती है और तब आदमी स्वयं को सम्राट् मानकर जीता है। यह अहं भावना उसमें अनेक कुंठाएं पैदा करती हैं।

मृत्यु भी महोत्सव है

आदमी जीवन को बहुत मूल्य देता है और मरने को बहुत खतरनाक मानता है। वह मरने से डरता है और जीने के प्रति लगाव रखता है। उसने अपने मन को इस द्वन्द्व के साथ जोड़ रखा है, इसलिए वह ऐसी स्थिति का अनुभव करता है। मरना-जीना एक नियति है, घटना है। अनुभवी साधकों ने लिखा कि शरीर को बदलना कोई विशेष घटना नहीं है। जन्म जैसे महोत्सव है, वैसे ही मृत्यु भी एक महोत्सव है। 'मृत्यु महोत्सव' नामक ग्रंथ भी उपलब्ध है। गीता कहती है—जैसे आदमी पुराने या जीर्ण कपड़े उतार कर नया कपड़ा पहनता है, वैसे ही है यह मरण। इससे डरने की क्या बात है! बड़े-बड़े आचार्यों ने इस बात को समझाया है। अनेक ग्रन्थ इस बात को सप्रमाण प्रस्तुत करते हैं। आदमी ने यह अनेक बार सुना है, पढ़ा है, फिर भी वह जीवन से मोह करता है और मरने से घबराता है। यह चित्त की विषमता की निष्पत्ति है।

द्वन्द्व का परिणाम

निंदा होती है, आदमी घबरा जाता है, दुःखी बन जाता है। प्रशंसा में दो शब्द सुनता है, फूल जाता है, बेभान हो जाता है। तब उसे बोलने का पूरा विवेक नहीं रहता। वह अहंकार में आ जाता है।

चुनाव का दौर था। उम्मीदवार गांव-गांव में जाकर जनता को अपनी बात समझा रहा था। एक गांव में चुनाव सभा हुई। भाषण हुआ। जनता ने कहा—हम आपको जिताना चाहते हैं, पर एक शर्त है कि गांव में अच्छा श्मशानघाट नहीं है। आप मंत्री बनेंगे, तब आपके लिए कुछ भी करना कठिन नहीं होगा।' उम्मीदवार प्रशंसा सुनकर फूल गया। वह बेभान होकर बोला—यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो छोटी-सी समस्या है। गांव में ही नहीं, मैं घर-घर में श्मशानघाट कर दूंगा।'

इस प्रकार अनेक द्वन्द्व हैं, जिनकी परिक्रमा कर रहा है आदमी। ये सारे द्वन्द्व चित्त की स्थिति को विषम बनाए हुए हैं। चित्त की इस विषमता का नाम ही है संसार। यह द्वन्द्वों की दुनिया है। हम उस दूसरे संसार की बात करते हैं, जो अद्वंद्वों का संसार है, अध्यात्म का संसार है। एक है व्यवहार का संसार और एक है निश्चय का संसार। एक है आभास का संसार और एक है सत्य का संसार। आभास के संसार में आभास तो होता है सत्य का, पर पूरी सचाई नहीं होती। सत्य के संसार में सत्य का पूरा साक्षात्कार होता है। दोनों के बीच में भेदरेखा यह है कि जहां चित्त की विषमता है वहां है व्यवहार का संसार और जहां चित्त की विषमता नहीं है, समता है वहां है अध्यात्म का संसार, वास्तविक संसार।

महत्त्व है समता का

हम चाहते क्या हैं–विषमता या समता ? हमें प्रिय क्या है–समता या विषमता ? हम चाहते हैं समता पर व्यवहार में लाते हैं विषमता। सिद्धांततः हमें प्रिय है समता, पर व्यवहार में है विषमता। जहां महत्त्व देने का प्रश्न आता है वहां हम समता को महत्त्व देते हैं। दो व्यक्ति लड़ रहे हैं। एक गाली-गलौज कर रहा है, दूसरा शांत है। लोग उस शांत व्यक्ति को पसंद करेंगे, उसे अच्छा बतायेंगे। झगड़ा या कलह करने वाले को कोई भी अच्छा नहीं कहेगा। इसका निष्कर्ष है कि हमारी अन्तश्चेतना का झुकाव सदा समता की ओर रहता है। किन्तु व्यवहार का गुरुत्वाकर्षण इतना तीव्र है कि वह विषमता की ओर खींचता है। एक ओर से समता की प्रेरणा प्राप्त होती है, दूसरी ओर से विषमता की प्रेरणा, यह बड़ी समस्या है।

विषमता का जीवन

पूरे इतिहास को देखें, जो व्यक्ति समता के साथ जीये हैं, उनको महान् आदर्श मान गया है। जिन लोगों ने विषमता का जीवन जीया है, उनका इतिहास तो है, पर उन्हें आदर्श व्यक्ति नहीं माना गया। उनके जीवन का अनुसरण करना किसी ने नहीं स्वीकारा। इतिहास में और हमारी धर्म परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें आदर्श और पूज्य माना गया है, क्योंकि उन व्यक्तियों ने इन सभी द्वन्द्वों–युगलों के परे का जीवन जीया है। जो इन द्वन्द्वों से अतीत होकर जीता है, वह आदर्श रूप बन जाता है। द्वन्द्व का जीवन है गाली के बदले गाली, ईंट का जवाब पत्थर से और एक की हत्या के बदले पांच की हत्या। प्रतिशोध का जीवन द्वन्द्व का जीवन है, संसार का जीवन है। यह चित्त की विषमता का जीवन है। गाली को सहना, ईंट के प्रहार को सहना, समभाव से सहना, यह है द्वन्द्वातीत जीवन।

बादशाह और बीरबल जा रहे थे। साथ में शाहजादा भी था। कुछ दूर गये। गर्मी लगी। बादशाह ने अपना लिबास उतारा और बीरबल के कन्धों पर रख दिया। शाहजादे ने भी ऐसा ही किया। बीरबल शांत था। कपड़ों का भार लादे वह साथ-साथ चल रहा था। बादशाह ने व्यंग्य के स्वर में कहा–'अरे बीरबल ! आज तो तुम एक गधे का बोझ उठाए हुए हो।' बीरबल ने सुना। कोई दूसरा होता तो आग-बबूला हो जाता। बीरबल ने हंसते हुए कहा–'जहांपनाह ! एक गधे का नहीं, दो गधों का भार ढो रहा हूं।'

ऐसी बात वही कह सकता है, जिसने विषमता को कम किया है। निष्कर्ष की भाषा में सोचें तो सामाजिक सन्दर्भ में भी हमने उस व्यक्ति के चिन्तन या व्यवहार को मूल्य दिया है, जिसने समतापूर्ण व्यवहार किया है, विषमता को कम करने का प्रयास किया है।

शाश्वत है परिणामिक भाव

समता का जागरण एक साथ नहीं होता। हर आदमी का सामान्य संस्कार है विषमता। यह रक्तगत है। इससे एक साथ छुटकारा पाना संभव नहीं है। किन्तु यदि हम सत्य के और अधिक निकट जाएं तो नया प्रकाश मिलेगा। हमारे व्यक्तित्व के दो मुख्य अंग हैं–शरीर और आत्मा। हम जीते हैं शरीर के स्तर पर और जीने के पीछे प्रकाश है आत्मा का। वह अमिट प्रकाश है, अमिट लौ है, जो कभी बुझती नहीं। शरीर एक आवरण है। वह उस प्रकाश को ढांकने का प्रयास करता है, लौ को बुझा देना चाहता है। किन्तु आत्मा की ज्योति अखंड है, अमिट है, बुझ नहीं सकती। बस, यही हमारे लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वास और आश्वास का स्थल है। जैन पारिभाषिक शब्दावली में इसे 'पारिणामिक भाव' कहा है। यह भाव है इसीलिए आत्मा का अस्तित्व समाप्त नहीं होता, अन्यथा इतना दबाव है परिस्थितियों का, कर्म-परमाणुओं का और शरीर का कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। किन्तु यह शाश्वत है पारिणामिक भाव, जो अपने अस्तित्व को सदा बनाए रख रहा है। उसके आधार पर हमारे शरीर की संरचना भी ऐसी हुई है कि हमारे शरीर में सब दो-दो हैं। क्रोध करने का केन्द्र मस्तिष्क में है तो उसके उपशमन का केन्द्र भी मस्तिष्क में है। जितनी वृत्तियां हैं, आवेश-आवेग हैं, उन सबके केन्द्र मस्तिष्क में हैं तो साथ-ही-साथ उन सबके नियन्त्रण-केन्द्र भी मस्तिष्क में हैं। यदि केवल वृत्तियों को जन्म देने वाले या उभारने वाले ही केन्द्र हों और नियामक-केन्द्र न हों तो आदमी जी नहीं सकता। दोनों साथ-साथ हैं। शरीर में दोनों प्रकार की व्यवस्थाएं हैं। संवेगों को उद्दीप्त करने की व्यवस्था है तो संवेगों पर नियंत्रण करने की भी व्यवस्था है। कर्मशास्त्र की भाषा में कहा जा सकता है कि हमारे शरीर में औदयिक भाव की व्यवस्था है तो क्षायोपशमिक भाव की भी व्यवस्था है। औदयिक भाव विषमता पैदा करता है और क्षायोपशमिक भाव विषमता को कम करता है, समता लाता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में जहां चित्त की विषमता मिलेगी वहां कुछ न कुछ समता भी मिलेगी। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है इस संसार में, जिसमें केवल विषमता हो या केवल समता हो। जब तक व्यक्ति चेतना के विकास के अन्तिम बिन्दु तक नहीं पहुंच जाता तब तक वह पूर्ण समभाव को प्राप्त नहीं होता। इसलिए साधना करने वाला साधु भी कभी क्रोध में आता है, कभी दूसरे-दूसरे संवेगों का स्पर्श करता है और साधना न करने वाला भी क्षमा करता है, संवेगों का स्पर्श नहीं करता। ये दोनों स्थितियां मिलती हैं।

आदर्श है वीतरागता

समता की चेतना का पूर्ण विकास, यह आदर्श की बात है, बहुत आगे की बात है। समता या वीतरागता हमारा आदर्श है। हमें उस बिन्दु तक पहुंचना है। वहां पहुंचने पर मूल बीज–राग और द्वेष नष्ट हो जाते हैं।

चार अवस्थाएं हैं। एक अवस्था है–उपशमन की, दूसरी है–क्षयीकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की, तीसरी है–विफलीकरण की और चौथी है–सफलीकरण की। क्रोध के प्रति क्षमा या मौन, यह क्रोध के विफलीकरण की प्रक्रिया है। एक है उपशमन की प्रक्रिया। एक व्यक्ति साधना इतनी कर लेता है, क्रोध को बाहर नहीं आने देता। भीतर ही उसका उपशमन कर देता है, दबा देता है। आग तो जल रही है, पर उसको राख से ढक देता है, पता नहीं चलता कि आग जल रही है।

क्षयीकरण की प्रक्रिया

एक है क्षयीकरण की प्रक्रिया। इसमें सारे दोष क्षय हो जाते हैं, नष्ट हो जाते है किन्तु हम पहले ही चरण में क्षयीकरण की बात नहीं सोच सकते। क्रमिक साधना करनी होगी। विकास धीरे-धीरे होगा। अनेक महीनों तक ध्यान करने वाला भी क्रोध में आ सकता है, अन्यान्य वृत्तियों के चक्र में फंस सकता है। उसे देखकर लोग कह देते हैं, देखो, यह कैसा ध्यानी! एक ओर ध्यान की साधना करता है, दूसरी ओर ऐसा व्यवहार करता है। यह विरोधाभास अवश्य है पर वे इस बात को भूल जाते हैं कि अभी यह मंजिल तक नहीं पहुंचा है, चल रहा है, वृत्तियों के विफलीकरण की बात सीख रहा है। धीरे-धीरे इन वृत्तियों से छूट जाएगा। यदि हमने यह मान लिया कि ध्यान करने वाले को गुस्सा आना ही नहीं चाहिए तो हमने भी ठीक वैसा ही विरोधाभास पाल लिया, जैसा दूसरे लोगों ने पाल रखा है।

बच्चे ने पिता से कहा–पिताजी! आज सूर्यास्त देखने चलना है। पिता बोला– मैं तो आज अभी बहुत व्यस्त हूं। कल सवेरे सूर्यास्त देखने चलेंगे।

लक्ष्याभिमुख चलें

सूर्यास्त देखना है, उसे सवेरे देखना है यह कितना बड़ा विरोधाभास है! आदमी भी अनेक प्रकार के विरोधाभासों का जीवन जीता है और उनको पालता ही चला जाता है। ध्यान करने वाला अभी सिद्ध नहीं, साधक है। उसका लक्ष्य है समता की चेतना का विकास, वीतरागता की चेतना का विकास। यह विकास साधना और काल-सापेक्ष है। हजारों-हजारों जन्मों के संस्कार एक ही प्रहार से टूट जाएं, यह कभी संभव नहीं है। इसके लिए तीव्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयत्न, प्रलंब काल और दृढ़ धैर्य अपेक्षित होता है। हमारा लक्ष्य निश्चित है। हम लक्ष्य के अभिमुख होते हैं तो वहां पहुंच भी सकते हैं। तेज चलने वाला पहुंच जाता है और धीरे चलने वाला विलम्ब से पहुंच पाता है। पहुंचेगे दोनों, चाहे शीघ्रता से या विलम्ब से।

चलत् पिपीलिका याति, योजनानि शताम्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोपि, पदमेकं न गच्छति॥

गरुड़ यदि शांत, स्थिर एक ही स्थान पर बैठा रहता है तो वह एक कदम भी मार्ग तय नहीं कर पाता और एक क्षुद्र चींटी चलती-चलती सैकड़ों योजन की दूरी पार कर लेती है।

मुख्य बात है चलना, प्रयत्न करना, अभ्यास करना। प्रश्न है क्या हम समता की चेतना को जगाने की दिशा में चलना चाहते हैं या नहीं ? यदि चलना नहीं चाहते हैं तो साधना समाप्त है। यदि चलना चाहते हैं तो चलें। मंजिल निकट आती-सी प्रतीत होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतिय

- मन के जीते जीत
- आभा मण्डल
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- एकला चलो रे
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- अपने घर में
- एसो पंच णमोक्कारो
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- समस्या को देखना सीखें
- नया मानव : नया विश्व
- भिक्षु विचार दर्शन
- अर्हम्
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- समय के हस्ताक्षर
- आमंत्रण आरोग्य को
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- अहिंसा तत्व दर्शन
- अहिंसा और शान्ति
- कर्मवाद
- संभव है समाधान
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- शक्ति की साधना
- धर्म के सूत्र
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा

आदि-आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यात्म का प्रथम सोपान

सामायिक

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org